मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

श्री हेमचन्द्राचार्य

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

५०

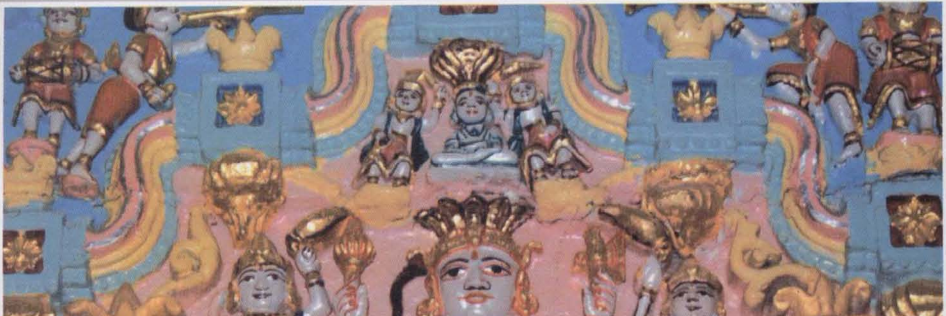

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी

स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2009

Jain Education International
www.jainelibrary.org

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

५०

सम्पादकः
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२००९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसन्धान ५०

आद्य सम्पादक: डॉ. हरिवल्लभ भायाणी

सम्पादक: विजयशीलचन्द्रसूरि

सम्पर्क: C/o. अतुल एच. कापडिया
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशक: कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम
जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि,
अहमदाबाद

प्राप्तिस्थान: (१) आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) सरस्वती पुस्तक भण्डार
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 120-00

मुद्रक:
क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनप्रभावक श्रुतस्थविर

पूज्य मुनिराज श्री जम्बूविजयजी महाराज

जेमनी पुण्यस्मृतिमां

'अनुसन्धान'-५० (१-२)

समर्पित छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवरणचित्र-परिचय

आ अंकमां 'मल्लिनाथ रास' छपायो छे. तेना कर्ता कवि ऋषभदास खम्भातना वीशा पोरवाड ज्ञातिना जैन श्रावक हता. तेमनुं पोतानुं काष्ठशिल्पकलामण्डित घर-देरासर हतुं. ते देरासर आजे पण खम्भातमां अने माणेकचोकमां ज अन्य नूतन मन्दिरमां आधुनिक रीते गोठवायेलुं विद्यमान छे. तेना उपरना भागमां पार्श्वनाथयुक्त पद्मावतीदेवीनी काष्ठ-प्रतिमानुं आ दृश्य छे. १७मा सैकानी उत्कृष्ट काष्ठकलानो आ श्रेष्ठ नमूनो छे.

टाइटल ४ उपर मूकेल चित्र ते पित्तलनी दीपदानीना तसवीर छे. गणदेवीमांथी उपलब्ध आ दीपदान तेनी प्रसन्न कलात्मक मुद्राने कारणे आकर्षणनुं केन्द्र बने छे. आ कलाकृति केटली प्राचीन हशे तेनो अन्दाज आवतो नथी, पण पुराणी होवा विषे कोई शंका नथी.

विशेष निवेदन

अनुसन्धाननो आ पचासमो अंक, दर्शनप्रभावक श्रुतस्थविर प्रवर्तक मुनिराज श्रीजम्बूविजयजीनी पुण्यस्मृतिमां सादर अंजलिरूपे प्रगट करवामां आवे छे. बे विभागमां छपानारा आ अंकना द्वितीय विभागमां तेमना विषे अंजलिरूप सामग्री आपवामां आवशे, तेनी नोंध लेवा सुज्ञ जनोने विनति.

शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

'अनुसन्धान'नुं ऐतिह्य

मारी सामे अनुसन्धानना १ थी ४९ अंको पड्या छे. मनमां एवुं ऊग्युं छे के आ सामयिक के अनियतकालिक पत्रिकानी कथा आलेखुं; एने माटे अंकोनो आ ढगलो करीने बेठो छुं. अढारे वर्षे, सगीर अवस्थामांथी बहार नीकळीने यौवनना उंबरे डग भरती पत्रिका परत्वे, आवुं अवलोकन करवानुं साव अप्रस्तुत तो नहीं ज गणाय, एवा ख्यालथी आ प्रारम्भुं छुं.

★

ई. १९९३नी आ वात छे. श्रीभायाणी साहेब उपाश्रये मने अपभ्रंश भाषा शीखववा माटे रोज आवता हता. वात हती सप्ताहमां बे वार आववानी. पण तेओ लगभग रोज आवता. समय अर्धा-पोणा कलाकनो नक्की करेलो. बेसे ने वातो चाले बे-अढी कलाक. विश्व भरना साहित्यनी, भाषाओनी, विद्वानोनी, विद्वानोनां कार्योनी अनेक वातो तेओ करे, अने आपणने प्रतीति करावे के भौतिक दुनियानी कोई पण बाबत करतां विद्याप्रीति तथा विद्याकार्य जराय ओछुं के हलकुं-नकामुं-बिनउत्पादक नथी.

आ सत्संग दरमियान ज एमणे एक दिवस वात उपाडी के "प्राकृत भाषा-साहित्य तथा जैन साहित्य विषे जे पण थोडुंघणुं काम थई रह्युं छे, तेनो विद्वज्जगत्ने ख्याल आवे के व्यापक वर्गने जाणकारी मळे तेवुं एक सामयिक प्रगट थवुं जोईए. कोई जैन संस्थाने आवुं काम करवानुं मन केम नथी थतुं ? आ एक बहु आवश्यक कार्य छे."

में आ सूचनना ऊंडाणमां ऊतरीने तेना आकार-प्रकार वगेरे विषे समजवानी जिज्ञासा व्यक्त करी, तो तेमणे सूचव्युं : 'अनुसन्धान' नाम रखाय. अनियत-कालिक होय. मोटा शोध-सामयिकनो फटाटोप न राखतां माहिती-पत्रिकानुं स्वरूप आपी शकाय. तेमां संशोधन-प्रकाशननां कार्यो ज्यां ज्यां चालतां होय, जे व्यक्ति के संस्था करती होय, तेनी विगतो भेगी थाय एटले अंक करवानो. महत्त्वनी वात नाणांकीय रोकाणनी छे, अने वितरण व्यवस्थानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छे. ए माटे कोई संस्था तैयार थवी जोईए.

में तेज क्षणे ते प्रस्तावने वधावी लेतां कह्युं : नाणांकीय तथा व्यवस्था बन्ने जवाबदारी 'हेमचन्द्राचार्य ट्रस्ट' संभाळशे, पण पत्रिकाना सम्पादन-संकलननी जवाबदारी तमे स्वीकारो तो ज. नाम तमारुं आवशे, बीजानुं नहीं. एमां लेखो लखवा, अन्यना लेख मेळववा, ए बधी बाबतो तमारे जोवानी. कोने कोने अंक मोकलवा, ते पण तमारे नक्की करी आपवानुं. लवाजम राखवानुं नहीं, निःशुल्क ज बधे मोकलवाना.

आ रीते नक्की थयुं - अनुसन्धाननुं प्रागट्य. मारी आ विषये कोईज आवडत के सज्जता नहि, छतां तेमणे पहेला अंकथी ज मारुं नाम मूक्युं. केम ? तो मारी नम्र समजण मुजब, कोई पण जैन संस्था आवा विलक्षण कार्यमां नाणां खरचवा तैयार न थाय तेवा वातावरणमां, मारा सूचनथी एक संस्था तैयार थई तेना ऋणस्वीकारनी भावनाथी तेमणे मारुं नाम लख्युं, जे योग्य के अयोग्य रीते पण, आज लगी चालु रह्युं छे. मने तो, एक मूर्धन्य विद्वज्जन द्वारा सूचित, मजाना के मूल्यवान् विद्याकार्यना निमित्त बनवानो मोटो परितोष हतो.

हवे एक योगानुयोग एवो थयो के ए ज अरसामां अमारे 'श्रीहेमचन्द्राचार्य ट्रस्ट'ना आश्रये, पं. दलसुखभाई मालवणिया तथा श्री हरिवल्लभ भायाणीनुं, 'हेमचन्द्राचार्य चन्द्रक' प्रदान करीने, बहुमान करवानुं हतुं. एटले पछी निश्चित थयुं के पत्रिकानो पहेलो अंक ते बहुमानना दिने ज प्रकाशित करवो. तरत ज तैयारी आदरी, अने बहु ज थोडा दहाडामां, ४२ पृष्ठोनो प्रथम अंक निर्धार्या प्रमाणे नियत समये प्रकाशित थई शक्यो. अे तैयार करवामां पण दृष्टि अने महेनत-बधुं भायाणी साहेब अने तेमना विद्यार्थी डॉ. कनुभाई शेठ वगेरेनुं ज हतुं, ते आ तके स्वीकारवुं जोईए.

प्रथम अंकना मुखपृष्ठ पर, पत्रिकानुं 'सूत्र' अने पत्रिकानो उद्देश, तेमणे आ प्रमाणे लख्या :

(१) Logo : 'मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू' - मुखरता सत्यवचननी विघातक छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) Object : प्राकृत भाषा अने जैन साहित्यविषयक सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका.

आ बन्ने वाक्यो पत्रिकाना आवरणपृष्ठ पर नियमित प्रगट थतां रह्यां छे.

१९९३ मां बे ज अंको थया हता. तेमां प्रथम अंक जोया पछी, अने ते जे जे व्यक्तिओ वगेरेने मोकलवामां आवेल तेनी यादी जोया पछी, मने ऊगेलो विचार में भायाणीजीने कह्यो के "आ पत्रिकानी भाषा गुजराती भले होय, पण तेनी लिपि देवनागरी राखीए. केम के देश-परदेशना अनेक विद्वानोने गुजराती लिपि उकेलवामां कष्ट थाय, पण नागरी लिपिमां ओछी तकलीफ थशे, अने तो तेओ वधु नहि तो पण, कृतिना सारांशने तो पकडी ज शकशे."

आ सूचन भायाणीजीने बहु गम्युं, अने फलत: बीजा ज अंकथी पत्रिकानी लिपि नागरी लिपि थई गई. अमारा आ प्रयोगने देशना तेम विदेशना अनेक विद्वानोए वखाणेलो, अने ते विषे पत्रो पण लखेला.

अंक क्रमाङ्क १७ पर्यन्त भायाणीजी आ पत्रिका साथे संकळायेला रह्या. छेल्ला ३-४ अंकोथी, जो के, तेमणे मोटा भागनी जवाबदारी छोडी दीधी हती. छतां तेमना लेखो, मार्गदर्शन वगेरे मळतां ज रह्यां. सत्तरमो अंक श्रीदलसुखभाई मालवणियानी स्मृतिमां कर्यो, ते तेमना हस्तक थयेलो छेल्लो अंक. ए पछी नवेम्बर ११, २०००मां भायाणीसाहेबनुं निधन थतां १८मो अंक २००१मां, तेमनी स्मृतिमां कर्यो, अने त्यारथी तमाम जवाबदारी मारा पर आवी.

'अनुसन्धान' अनियतकालिक पत्रिका तो छे ज, अनरजिस्टर्ड पत्रिका पण छे. तेनो एकमात्र उद्देश स्वाध्याय, संशोधन अने जाणकारी (माहिती) छे, अने तेने माटे सरकारी लायसन्स लईने अनेकविध आंटीघूंटीना कळणमां फसावानी कोई ज इच्छा अमारी नहोती/नथी. आ पत्रिकानो प्रकाशन-आंक आवो रह्यो छे :

ई. १९९३/२, १९९४/१, १९९५/२, ९६/२, ९७/३, ९८/२, ९९/३, २०००/२, २००१/१, २००२/३, २००३/५, २००४/४, २००५/४, २००६/३, २००७/५, २००८/४, २००९/३. सत्तर वर्ष अने ४९ अंको. अढारमा वर्षे तेनो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पचासमो अंक थई रह्यो छे ते, ओछामां ओछुं मारा माटे, अने आमां रस लेनारा दरेक माटे, एक आनन्दनो तेम आश्वस्ततानो एहसास करावी जाय छे.

अनुसन्धानने अनेक मान्य-मूर्धन्य विद्वज्जनोनां अभिनन्दन सांपड्यां छे. कविवर मकरन्द दवे पण आमां ऊंडो रस लेता हता. तो अनेक विद्वानोनो सहयोग पण अनुसन्धानने मळ्यो छे. तेमां पण श्रीहरिवल्लभ भायाणी अने श्री जयन्त कोठारी - ए बेनी शब्दचर्चाओ ए आ पत्रिका माटे अलंकरण जेवी सामग्री बनती रही हती. डॉ. के.आर.चन्द्र, डो. ढांकी, डो. नगीन शाह वगेरे धुरन्धर विद्वानोनी पण कलम-प्रसादी आ पत्रिकाने मळी छे.

अफसोस एटलो ज के ए विद्वानोनी गेरहाजरीमां ए प्रकारनी शास्त्रीय शब्दचर्चा करे तेवा कोई विद्वान हवे रह्या नथी, अथवा एवा लेखोथी अनुसन्धान हवे वंचित रहे छे.

अनुसन्धानने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, जूनी (मध्यकालीन) गुजराती इत्यादि भाषाओनी अनेक अप्रगट रचनाओने प्रकाशमां आणी छे. ए रचनाओ महदंशे पद्यात्मक छे. केटलीक गद्य पण खरीज. अनेक ऐतिहासिक तथ्यो 'टूंक नोंध' तथा अन्य लेखो द्वारा उजागर कर्यां छे. अनेक प्रकाशनो विषे माहिती पीरसी छे.

आचार्य हरिभद्रसूरिनी रचेली 'धूमावली' जेवी अप्रगट - अज्ञात लघु रचनाओ होय, योगीराज आनन्दघननी अप्रगट-अज्ञात रचना होय, कवि ऋषभदासे रचेल-स्वहस्ते लखेल रास होय, तेने प्रकाशित करवानुं श्रेय अनुसन्धानने फाळे जाय छे. 'पञ्चसूत्र' ए आ. हरिभद्रसूरिनी पोतानी रचना छे, चिरन्तन आचार्यनी नहि, ते पुरवार करवानो यश पण अनुसन्धानने ज मळ्यो छे.

जैन मुनिओनी वात करुं तो उपाध्याय भुवनचन्द्रजीए आ पत्रिकामां हमेशां ऊंडो रस लीधो छे. तेमनुं 'विहंगावलोकन' आ पत्रिकानुं घरेणुं छे. अनुसन्धाननी सामग्रीमां क्यां केटली ने केवी भूल छे, ते बहुज प्रेमपूर्वक तेओ तेमां नोंधे छे, चींधे छे; अने अमे पण तेने एटला ज प्रेमपूर्वक, कशाये फेरफार-कापकूप विना छापीए छीए. खेद एटलो ज के बीजा जैन मुनिराजो हजी आमां जोईए तेटलो ऊंडो रस लेता नथी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसन्धानना १९मा अंक पछी, एकबे अंकोने बाद करतां दरेक अंकनां उपरणां पर विभिन्न चित्रो मूकवामां आवे छे, जेने लीधे अंको रमणीय बने छे. मोटा भागे तेनो परिचय पण आपवामां आवे छे.

अनुसन्धानना सम्पादक तरीके क्वचित् साहित्यना/विद्याना/संशोधनना क्षेत्रे थती अनेक जाणवा मळती गरबडो परत्वे चिन्तनात्मक के सत्यनिवेदनात्मक लखाणो पण लखवानुं आव्युं छे. तेवे वखते कोईनाय प्रत्ये द्वेष, दंश, दुर्भाव लाव्या-राख्या विना, शुद्ध विद्याप्रीतिरूपे, जे कहेवानुं होय ते, गांठोगळफो राख्या वगर कही शकायुं छे, तेनो आनन्द पण छे. आ कारणे, सम्बन्धित व्यक्तिओने माठुं पण लाग्युं होवानुं जणायुं छे, परन्तु, तेनी सामे, निष्पक्ष अने मान्य विद्वज्जनो तथा विचारशील लोकोनो सानुकूल प्रतिभाव, बहु मोटा प्रमाणमां सांपड्यो छे, एम पण जाहेर करवुं जोईए.

अनुसन्धान एक आनन्ददायक विद्याकीय प्रवृत्ति छे. तेणे-तेना माध्यमथी मने घणुं घणुं शीखवा मल्युं छे. घणा विद्वानो तथा साहित्यकारोनो सम्पर्क करावी आप्यो छे. तो, आ पत्रिकाना कारणे मारा साथी साधुजनो तथा अमुक साध्वीजीओ पण हस्तलिखित पोथीओ वांचतां, नकल करतां तथा सम्पादन करतां शीख्यां छे. आ बधो लाभ घणो महत्त्वनो लागे छे.

अन्तमां अमारा प्रकाशक एवा ट्रस्टने पण संभारी लऊं. 'हेमचन्द्राचार्य ट्रस्ट तथा तेना ट्रस्टीओ शेठ पंकजभाई वगेरेए हमेशां आ पत्रिकाना काममां पूरो सहकार आप्यो छे. क्यारेक अंकमां विलम्ब थयो होय तो उघराणी पण करी छे के केम आ वखते अंक नथी कर्यो ?

तो क्रिष्ना ग्राफिक्सना हरजीभाई पटेल, किरीट पटेलनो पण मुद्रणना कार्यमां चीवटभर्यो सहयोग रह्यो छे. भायाणीजीए तेमना पर मूकेलो विश्वास सार्थक ठरे तेवी तेमनी काळजी होय छे.

अनुसन्धानना अंकोमां आज पर्यन्त प्रकाशित सामग्रीनी एक वर्गीकृत तालिका अवसरे तैयार करी आपवानी इच्छा छे.

तो आ छे अनुसन्धाननुं ऐतिह्य.

– शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

खण्डेल्लकगच्छीय श्री शान्तिसूरि-विरचिता
भक्तामरस्तव - वृत्तिः ।। — सं. विजयशीलचन्द्रसूरि — १

अज्ञातकर्तृका
भक्तामरस्तव-सुखबोधिका वृत्तिः — सं. विजयशीलचन्द्रसूरि — २४

श्री विवेकचन्द्रगणि कृतम्
भक्तामरस्तोत्र-पादपूर्ति आदिनाथ-स्तोत्रम् — सं. विनयसागर — ३७

भवनभूषण-भूषणभवन काव्य — सं. उपा. भुवनचन्द्र — ४३

धर्मरत्नदुर्लभत्वम् — सं. मुनिकल्याणकीर्तिविजय — ५४

त्रिभाषामयी श्रीनेमिसूरीश्वरस्तुतिः — सं. मुनिकल्याणकीर्तिविजय — ६३

एक विज्ञप्तिपत्र — सं. मुनित्रैलोक्यमण्डनविजय — ६५

श्री पद्मानन्दसूरि रचित श्रावक-विधि रास — म. विनयसागर — ९३

श्रीदेवचन्द्रमुनिकृत
तेजबाई व्रतग्रहण सज्झाय — सं. मुनिसुजसचन्द्र-सुयशचन्द्रविजयौ — १०१

कवि ऋषभदास कृत
श्रीमल्लिनाथनो रास — सं. साध्वी दीप्तिप्रज्ञाश्री — १११

सुश्री कौमुदी बलदोटा - लिखित
'' 'नारद' के व्यक्तित्व के बारे में जैन
ग्रन्थों में प्रदर्शित संभ्रमावस्था''
इस शोधपत्रके बारे में कुछ विचार — मुनि कल्याणकीर्तिविजय — १४२

ग्रन्थपरिचय :
'तर्करहस्यदीपिका' नो अनुवाद — उपा.भुवनचन्द्र — १४५

माहिती :
नवां प्रकाशनो — १४७

Jain Education International — For Private & Personal Use Only — www.jainelibrary.org

खण्डेल्लकगच्छीय श्री शान्तिसूरि-विरचिता

भक्तामरस्तव - वृत्तिः ॥

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

केटलाक समय अगाऊ डॉ. मधुसूदन ढांकीए सूचवेलुं : भक्तामर पर शान्तिसूरिकृत एक टीका खम्भातमां छे, ते उपलब्ध टीकाओमां सौथी प्राचीन छे. तेने प्रकाशित करवानी जरूर छे. आ सूचनने याद राखीने आ वखतनी खम्भातनी स्थिरतामां आ टीकानी प्रतिलिपि ऊतारी छे, अने ते अत्रे प्रकाशित करवामां आवे छे.

खण्डेल्लक गच्छ अने शान्तिसूरि - आ बन्ने नामो टीकाना अन्तभागमां उल्लेखायेलां छे. श्रीशान्तिसूरिना सत्ताकाल विषे कोई सन्दर्भ उपलब्ध नथी. परन्तु टीकानी निराडम्बर शैली अने शब्दोना अर्थ तेमज प्रश्नोत्तरीरूपे तेनी प्रस्तुति वगेरे जोतां १२मा शतकथी अर्वाचीन ते होय तेम जणातुं नथी.

खम्भातना शान्तिनाथ प्राचीन ताडपत्र ग्रन्थभण्डारमां क्र. २७८ पर स्थित आ टीका-प्रति २८ पत्रोनी छे. तेनी लखावट उपरथी तेओ आनुमानिक लेखन संवत् विक्रमनो १५मो शतक होवानुं पूज्य श्रीपुण्यविजयजी महाराजे निर्देश्युं छे (Catalogue of Palm-leaf MSS. in the Shantinatha Jain Bhandara, Cambay : सं. मुनि पुण्यविजयजी, प्र. गायकवाड्झ ओरिएन्टल सिरीझ, बरोडा - नं. १४९, ई. १९६६, पृ. ४३२)

बे-एक ठेकाणे टीकांशो त्रुटित छे. एक पानुं फाटेल होवाथी पाठ तूटेलो छे. ते सिवाय बधी - ४४ गाथाओ तथा तेनी टीका परिपूर्ण रूपमां उपलब्ध छे. १५मुं काव्य तेमज तेनी अवतरणिकारूप टीकांश, लखायेल नथी. ते पैकी काव्य तो प्रचलित पाठ परम्परा प्रमाणे लखीने उमेरेल छे.

केटलांक पद्योमां नानकडा पण पाठभेदो जोवा मळे छे, तेनी नोंध आ प्रमाणे : पद्य १०नुं प्रथम चरण, प्रचलित परम्परामां "**नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूत ! नाथ !**" आम बोलाय छे. ज्यारे अहीं ते चरण "**नात्यद्भुतं भुवनभूषण ! भूतनाथ !**" ए प्रमाणे आलेखायुं छे. '**भूतनाथ**'नी टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'**प्राणिप्रभो !**' एम करवामां आवी छे.

पद्य १२ मां प्रथम चरण "**यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं**" ए प्रमाणेनो पाठ प्रचलित छे. आ टीका प्रमाणे ते पाठ "**यैः शान्तराग ! रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं**" एम छे. '**हे शान्तराग !-वीतराग**', तथा '**रुचिभिः -दीप्तिमद्भिः**' एवी त्यां टीका पण छे.

पद्य २०मां त्रीजुं चरण आ प्रमाणे प्रचलित छे : "**तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं**'. परन्तु आ टीकामां ते स्थाने "**तेजो महामणिषु याति यथा महत्त्वं**" एम पाठ छे. तेनी टीका पण-'**महामणिषु-महारत्नेषु-इन्द्रनीलादिषु**' एवी छे.

पद्य २५, प्रथम चरण "**बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्**" एम प्रचलित छे. ज्यारे अहीं "**बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धिबोधात्**" एम पाठ जोवा मळे छे. तेनी टीकामां पण '**बुद्धिबोधात् - बुद्ध्या - केवलज्ञानेन सकलतत्त्वपरिच्छेदात्**', तथा '**विबुधार्चित ! - शक्रादिदेवसंघातपूजित !**' एम विवरण छे.

पद्य २७मां चोथा चरणमां "**कदाचिद् वीक्षितोऽसि**" पाठ छे, अने तेनी टीका पण ते ज पाठ प्रमाणे छे. ज्यारे प्रचलित पाठ '**कदाचिदपीक्षितोऽसि**' एम छे, जे बधी दृष्टिए उचित पण छे.

पद्य ३९मां "**वेगावतारतरणातुरयोधभीमे**" एम बीजुं चरण प्रसिद्ध छे. अहीं "**वेगावतारतरुणातुरयोधभीमे**" पाठ छे. तेनी टीकामां पण, '**वेगावतारेण-जवावतरणेन तरुणा-युवानः**' एम विवरण छे.

तो ते ज पद्यना चतुर्थ चरणमां "**०वनाश्रयिणो लभन्ते**" पाठ तो छे ज; पण टीकाकार तेनो पाठभेद आम नोंधे छे : "**०समाश्रयिण इति पाठः**".

प्रतिलिपि करवा देवा बदल खम्भातना शां.प्रा. जैन ताडपत्र भण्डारना कार्यवाहकोनो ऋणस्वीकार करुं छुं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्तामर-वृत्तिः ॥

ॐ नमो वीतरागाय ॥

वृत्तिं भक्तामरादीनां स्तवानां वच्मि यथोचितम् ।
संक्षेपान्मुक्तिलाभाय सुखबुद्धिप्रबुद्धये ॥१॥

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः स्तोष्ये किलाऽहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

युगलम् ॥

अहमपि, न केवलमिन्द्रादयः स्तुतवन्तः । स्तोष्ये-स्तवं विधास्ये । किलेत्यात्मनोऽस(श)क्तिमौद्धत्यपरिहारार्थम् । चित्तहरैरुदारैरिति । मानतुङ्गाचार्य कविः । किं स्तोष्ये ? । तं जिनेन्द्रम् । रागादीनां जेतृत्वाज्जिनाः सामान्यकेवलिनः, तेषामिन्द्रः-प्रधानस्तीर्थंकरः । तं किम्भूतं ?। प्रथममाद्यमृषभनाथमित्यर्थः । यः किम्भूतः ? । संस्तुतः-सम्यग्-भक्तिबहुमानपुरस्सरम्; भगवदतिसा(शा)यिगुण-परिज्ञानपूर्वकं वा स्तुतो-नुतो-वन्दितः । कैः कर्तृभिः ?। सुरलोकनाथैर्देवनिवास-प्रभुभिरिन्द्रैः । कीदृशैः ?। उद्भूतबुद्धिपटुभिः । प्रादुर्भूता या बुद्धिर्मतिस्तया पटवो दक्षा विद्वांसस्तैः । कुत ईदृशैः ?। सकलवाङ्मयतत्त्वबोधात् । वाचा निर्वृत्तं वाङ्मयं शास्त्रजातम् । सकलं च तद् वाङ्मयं च सकलवाङ्मयं, तस्य तत्त्वं परमार्थः, तस्याऽवबोधो ज्ञानं । तस्मात् - शास्त्रावगमात् । कैः कृत्वा संस्तुतः ?, स्तोत्रैः-स्तवनैः । कीदृशैः ?, जगत्त्रितयचित्तहरैः । जगतां-भुवनानां त्रितयं-त्रयं, तस्य चित्तानि, तानि हरन्ति-रञ्जयन्तीति तानि तथोक्तानि । तैर्जगत्त्रये जन्तुमनआवर्जकैः, अत एवोदारैः-उदारार्थैरुद्भटैर्वा । किं कृत्वा स्तोष्ये ?, प्रणम्य-प्रकर्षेण नत्वा । कथं ?, सम्यग् बहुमानयुक्तम्; गुणावबोधसहितं वा । किं तद् ?, जिनपादयुगं - वीतरागचरणयुगलम् । कीदृशं ?, आलम्बनं-आश्रयणं । केषां ?, जनानां-लोकानां -प्राणिनामित्यर्थः । किं कुर्वतां ?,पततां-अधो गच्छतां-निमज्जतां । क्व ?, भवजले । भवन्ति-उत्पद्यन्ते कर्मायत्ता जन्तवो यस्मिन् सं.(स) भवः-संसारः । स एव जलं-संसारोदकं तस्मिन् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कस्मिन् काले जिनपादयुगमालम्बनम् ?; युगादौ - अवसर्पिणीसमयतृतीयारक-पर्यन्तकाले । कीदृशम् ?, उद्योतकं-उद्दीपकं-विस्फारकम् । कासां ?, भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणाम् । भक्ता-भक्तिमन्तो ये अमरा-देवाः, तेषां प्रणता-नम्रीकृता एव मौलयः-शिरोमुकुटानि तेषु मणयो-रत्नानि इन्द्रनीलादीनि, तेषां प्रणता-नम्रीकृता एव मौलयः-शिरोमुकुटानि तेषु मणयो-रत्नानि इन्द्रनी लादीनि, तेषां प्रभा-दीप्तयोऽनेकवर्णाः तासां, भगवत्पादयुग्मस्याऽतिदीप्तिमत्त्वात् । तथा, दलितपापतमोवितानम् । दलितं-विध्वस्तः(स्तं) पापमेव-किल्बिषमेव तमोवितानोऽन्धकारविस्तारोऽपकारित्वाद् ये[न] ते(त)त्तथोक्तम् ॥१-२॥

साम्प्रतं 'किले'त्यनेन पदेनाभौ(नौ?)द्धत्यं सूचितमात्मनस्तदेव प्रकटयति-

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ ! स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ?
॥३॥

हे विबुधार्च्चितपादपीठ ! हे देवपूजितचरणासन ! भक्तिपरत्वात् प्रणतिसमये, देवद्रुमकुसुमैः, स्तोतुं-नवितुं, समुत्पद्यत (समुद्यत) मतिरुद्यमवद्बुद्धिः, अहं वर्त्ते । कीदृशः सन् ?, विगतत्रपोऽपगतलज्जः सन् । कथं स्तोतुं समुत्पद्यत (समुद्यत)मतिः?। विना-ऋतेऽपि, कया ? बुद्ध्या-सेमुख्या (शेमुष्या), बुद्धिरहितोऽपीत्यर्थः । यश्च बुद्धिरहितः स्तवे प्रवर्त्तते स निर्लज्जो भवत्येव । अत्राऽर्थेऽ**र्थान्तरन्यास**माह-कोऽन्योऽपरो जनो लोको विवेकी सहसा-झटिति ग्रहीतुमादातुमिच्छति-वाञ्छति ?, नैव कश्चित् । किं तद् ?, इन्दुबिम्बं-चन्द्रप्रतिमाम् । कीदृशम् ?, जलसंस्थितमुदकाश्रितम् । किं कृत्वा ?, विहाय-त्यक्त्वा । किम् ?, बालमज्ञं शिसुं(शुं)वा । स एव गृह्णातीत्यर्थः । तथा मां त्यक्त्वा जानानो न कोऽपि भगवद्गुणानां दुर्ल्लेपत्वात् स्तवे न प्रवर्तत इति ॥३॥

कुतो विगतलज्ज इत्याह -

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्, कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या,
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं, को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्॥४॥

कः क्षमः - सक्वो (शक्तः) ?, न कोऽपि । किं कर्तुं ?, वक्तुं - भाषितुम् । कान् ?, गुणान् ज्ञानादीन् । कस्य ? ते-तव । कीदृशोऽपि ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरगुरुप्रतिमोऽपि-बृहस्पतितुल्योऽपि । कया ? बुद्ध्या-सेमुख्या (शेमुष्या) । हे गुणसमुद्र ! - गुणरत्नाकर ! । कीदृशान् ? शशाङ्ककान्तान् - चन्द्रवदुज्ज्वलान् । अत्रार्थेऽर्थान्तरन्यासमाह-को वा तरीतुं-प्लोतुं, अलं-समर्थः ?। नैव कश्चित् । कम् ? अम्बुनिधिं-समुद्रम् । काभ्याम् ? भुजाभ्यां-बाहुभ्याम् । कीदृशम् ? कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रम्, कल्पान्तकाले [आ]युक्षयसमये दर्शितम् ॥४॥

यद्येवं, तर्हि किमर्थं स्तवने प्रवृत्तः ? इत्याह-

सोऽहं तथापि तव भक्तिवसा (शा)न्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ? ॥५॥

यद्यपि वक्तुं गुणान् तव न कोऽपि शक्तः तथापि, सोऽहं विगतशक्तिरपि-सामर्थ्यहीनोऽपि । हे मुनीश ! - गणधरादिमुनिस्वामिन् ! । प्रवृत्तः-प्रवृत्तिमान् । किं ? कर्तुं - स्तवं विधातुम् । कस्य ? तव-भवतः । कुतः ? भक्तिवसा(शा)त् - आन्तरभावप्रेरितः सन् । अत्रार्थे **अर्थान्तरन्यास**माह- किं नाभ्येति ?-आभिमुख्येन किं न गच्छति ?। कोऽसौ ? मृगो-हरिणः । कम् ? मृगेन्द्रं-सिंहम् । गच्छत्येव । कया ? प्रीत्या-प्रणयेन । किं कृत्वा ? अविचार्य-अपर्यालोच्य । किं तद् ? आत्मवीर्यं-निजबलम् । किमर्थम् ? परिपालनार्थम् । कस्य ? निजशिशोः - आत्मीयबालस्य । यथा मृगो निजबालरक्षणार्थं सिंहाभिमुखं प्रवृत्तः, तथाऽहमपि स्तवं कर्तुं प्रवृत्त इति ॥५॥

नन्वल्पश्रुतस्य स्तवकरणे कथं मुखरता भवति ? इत्याह -

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत् कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः ॥६॥

त्वद्भक्तिरेव-भवत्सेवैव मां मुख(?) मुखरीकुरुते-वाचालयति । कुतः ? बलात्-हठात् कारण[तः] । कीदृशं माम् ? अल्पश्रुतं-स्वल्पशास्त्रावबोधम् । तथा परिहासधाम-चसूरीस्थानम् । केषाम् ? श्रुतवतां-बहुशास्त्रज्ञानां विदुषाम् । अत्रैवार्थेऽर्थान्तरन्यासमाह यत् कोकिलः-यस्मात् पिको मधौ-चैत्रे मधुरं-कर्णसुखदं चारु । किल प्रसिद्धौ । विरौति-नानाप्रकारं वक्ति । तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- चारुश्चासौ चूतकलिकानिकरश्च स तथोक्तः, स एवैकहेतुः-अनन्यकारणं स तथा । तस्य विवरणस्य चारुकलिकानिकरैकहेतुः स तथोक्तः । वसन्ते किल कोकिलनानाशब्दना(न)स्य शोभनाऽऽम्रमञ्जरीसंघात एको हेतुर्यथा तथा मम स्तवनकरणे त्वद्भक्तिरेवैको हेतु(:) ॥६॥

ननु स्तवेन किं फलम् ? अत आह-

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं पापं क्षणात् क्षयमु[पै]ति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु सूर्यांशुभिन्नमिव सा(शा)र्वरमन्धकारम् ॥७॥

शरीरभाजां-प्राणिनां पापं-पातकं क्षणाद्-अल्पकालेन क्षयं-विनाशं उपैति-गच्छति । कीदृशम् ? भवसन्ततिसन्निबद्धं-जन्मपरम्परोपार्जितम् । केन केन हेतुना करणेन च ? त्वत्संस्तवेन-भवत्संस्तवनेन । उपमामाह-अन्धकारमिव-तम इव, यथा तमो विनाशं गच्छति । किम्भूतम् ? सा(शा)र्वरं-रात्रिसत्कम् । कीदृशम् ? आक्रान्तलोकं-व्याप्तभुवनम्, तथाऽलिनीलं-भृङ्गकृष्णम्, तथाऽशेषं-सकलम् । कथम् ? आशु-शीघ्रम् । किम्भूतं सत् ? सूर्यांशुभिन्नं-रविकरविदारितम् ॥७॥

यतस्तव संस्तवेन क्षणात् क्षयं पापमुपैति, अत आह-

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८॥

इदं - वक्ष्यमाणं संस्तवनं - संस्तवो मया । कीदृशेनापि ? तनुधियाऽपि-स्तोकबुद्ध्याऽपि आरभ्यते-क्रियते । हे नाथ !- स्वामिन् !। कस्य सम्बन्धि ? तव-भवतः । किं कृत्वा ? मत्वा-ज्ञात्वा । किं तद् ? इति - पूर्वश्लोकभणितम् । कुत आरभ्यते ? तव प्रभावाद्-भवतः सामर्थ्यात्, नाऽऽत्मीया स्तवनकरणशक्तिरस्ति । तच्च चेतो-मनो हरिष्यति-रञ्जयिष्यति । केषाम् ? सतां-सत्पुरुषाणां सुजनानाम् । अत्र-अत्रार्थे**ऽर्थान्तरन्यास**माह-ननु-अहो !, उदकबिन्दुः-तोयबिन्दुः मुक्ताफलद्युतिं-मौक्तिकशोभां उपैति-गच्छति । केषु ? नलिनीदलेषु-पद्मिनी पत्रेषु स्थितः । यथोदकबिन्दुर्विशिष्टाधारवशेन शोभां प्राप्तवान्, तथा मदीयमपि स्तवनं सुजनाधारत्वेन प्रसंशां(शंसां) प्राप्स्यति ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न केवलं भवतः स्तवने (स्तवेन ?) सर्वदोषापगमः, कथापि दुरितं हन्ति, एतदाह-

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

आस्तां-तिष्ठतु तव स्तवनं-स्तोत्रम् । कीदृशम् ? अस्तसमस्तदोषं-निराकृति(त)सकलरागादिदोषगणं, त्वत्संकथाऽपि-भवद्वार्त्ताऽपि जगतां-भुवनवर्त्तिप्राणिनां दुरितानि-दुःकृतानि निहन्ति-विनाशयति । अत्रार्थे-**ऽर्थान्तरन्यास**माह -दूरे-विप्रकृष्टे तिष्ठतु । कोऽसौ ? सहस्रकिरणो-भानुः । कुरुते-विदधाति । कोऽसौ ? प्रभैव-दीप्तिरेव । कानि कुरुते ? जलजानि-पद्मानि । कीदृशानि ? विकाशभाञ्जि-विकसितानि । केषु ? पद्माकरेषु-पद्मखण्डेषु । रविस्थानीयं स्तवनं, प्रभातुल्या संकथेति ॥९॥

यश्च भक्त्या भवन्तं स्तौति स तवैव समो भवतीति दर्शयति-

नात्यद्भुतं भुवनभूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याऽऽश्रितं य इह नात्मसमं करोति ? ॥१०॥

तदेतन्नात्यद्भुतं-नाश्चर्यकारि यत् तुल्याः समानाः भवतः-तव भवन्ति-जायन्ते । हे भूतनाथ !-प्राणिप्रभो !। क(की)दृशः ? भुवनभूषण !-जगज्जन्तु-मण्डन ! किं कुर्वन्तः ? अभिष्टुवन्तः-नुवन्तः । कम् ? भवन्तं-त्वाम् । कस्याम् ? भुवि-पृथव्याम् । कैः ? गुणैर्ज्ञानादिभिः । कीदृशैः ? भूतैः-सद्भूतैः सत्यैः । **अर्थान्तरन्यास**माह-ननु-अहो !, किंवा यथा (अथवा) किं प्रयोजनम् ?। केन ? तेन-प्रभुणा, य इह जगति [न]करोति-न विदधाति । कम् ? आश्रितम् । कीदृशम् ? आत्मसमं-आत्मसमानम् । कया ? भूत्या-श्रिया ॥१०॥

अतिशयरूपवत्त्वं भगवतो दर्शयितुमाह-

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं नान्यत्र तोषमुपजा(या)ति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति दुग्धसिन्धोः क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ? ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनस्य-लोकस्य [चक्षुः]-नेत्रं तोषं-तुष्टिं न उपजा(या)ति- लभते । क्व ? अन्यत्र-त्वत्तोऽपरस्मिन् दृष्टे सति । किं कृत्वा ? दृष्ट्वा-अवलोक्य । कम् ? भवन्तं-त्वाम् । कीदृशम् ? अनिषिध(अनिमेष)विलोकनीयं - निमेषरहितं यथा भवति तथा विलोक्यते यः स तथोक्तः, तम् । अतिरूपत्वाद् भवन्तं पश्यन्तो नेत्रनिमीलनमपि विघ्नकल्पत्वान्न कुर्वन्तीत्यर्थः । अत्रार्थे**ऽर्थान्तर-न्यास**माह- कः-प्राणी इच्छेद्-अभिलषेत् । किं कर्तुम् ? रसितुं-आस्वादयितुम् । किं तत् ? जलं-पानीयम् । किम्भूतम् ? क्षारं-दुष्टास्वादम् । कस्य ? जलनिधेः-समुद्रस्य । किं कृत्वा ? पीत्वा-रसित्वा । किं तत् ? पयो-जलम् । कीदृशम् ? शशर(शशिकर)द्युति-चन्द्ररस्मि(श्मि)निर्मलम् । कस्य ? दुग्धसिन्धोः-क्षीरसागरस्य । नैव कश्चिदिच्छेदित्यर्थः ॥११॥

अहमेवं मन्ये-भवद्देहनिःपत्तये येऽणवो व्याधृ(पृ)तास्ते तावन्त एव । यत्(त) आह-

यैः शान्तराग ! रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ! ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति ॥१२॥

खलु-निश्चयेन तेऽपि-ते पुनः अणवः-परमाणवः तावन्तः-तत्परिमाणा एव, अन्ये न सन्तीत्यर्थः । यैः परमाणुभिस्त्वं-भवान् निर्मापितो-निःपादितः । कीदृशैः ? रुचिभिः-दीप्तिमद्भिः । हे शान्तराग ! - वीतराग ! । कीदृशो निर्मापितः ? त्रिभुवनैकललामभूतो-जगत्त्रयाद्वितीयतिलक इव भूतशब्द इवार्थे । तावन्त एव । कस्याम् ? पृथिव्यां - भुवि । कथं ज्ञायते ? यद्-यस्माद् नहि-नैव अपरं-अन्यद् रूपं-आकृतिः अस्ति-विद्यते । कीदृशम् ? समानं-तुल्यम् । कस्य ? ते - तव ॥ अनेनापि रूपातिशयत्वं भगवतो दर्शितम् ॥१२॥

साम्प्रतं भगवतो मुखं वर्णयति-

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य
यद् वासरे भवति पाण्डुपलास(श)कल्पम् ॥१३॥

निःशेषं-समस्तं यथा भवति तथा, निःशेषाणि वा निर्जितानि-तिरस्कृतानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगत्त्रितये वर्तमानानि उपमानानि-उपमा येन तत्तथोक्तम् । भगवन्मुखतुल्यं किञ्चिदपि नास्तीत्यर्थः । चन्द्रबिम्बमुपमानं भविष्यतीति चेत्, आह-बिम्बं-मण्डलं क्व ?- नैतत् । कीदृशम् ? कलङ्कमलिनं-मृगलाञ्छनलाञ्छितं कुशोभमित्यर्थः । कस्य ? निशाकरस्य-चन्द्रस्य, यद्-बिम्बं भवति-जायते । क्व ? वासरे-दिवसे । कीदृशम् ? पाण्डुपलाशकल्पं-पक्वपत्रतुल्यम् । कलङ्कयुक्तत्व-निस्तेजस्त्वाभ्यां न समानं भगवन्मुखं च विपरीतम् ॥१३॥

निरुपमगुणाश्रयत्वाद् भगवान् स्तुत्य [इ]ति दर्शयि(य)ति-

सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप !
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संस्त्रि(श्रि)तास्त्रिजगदीश्वर ! नाथमेकं
कस्तां(स्तान्) निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ? ॥१४॥

हे सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककला[कला]प ! - परिपूर्णबिम्बो यः शशाङ्कः-चन्द्रस्तस्य कला तत्कलापो-द्विसप्ततिकलासमूहो यस्य स तथोक्तः, तस्यामन्त्रणं हे सम्पूर्णे त्यादि । एते गुणा-ज्ञानादयः शुभ्रा-धवलास्तव-भवतस्त्रिभुवनं-जगत्त्रयं लङ्घयन्ति-अतिक्रामन्ति-जयन्तीत्यर्थः । ये संश्रिता-आश्रितास्त्रिजगदीश्वर ! -हे भुवनत्रय प्रभो ! । कं संश्रिताः ? नाथं-स्वामिनं च । किम्भूतम् ? एकं -अद्वितीयम् । यद्वा त्रिजगदीश्वरा भवनपति-व्यन्तर-ज्यो[ति]ष्क-वैमानिकेन्द्रास्तेषां नाथं-स्वामिनं त्वां संश्रित्या (ताः) । अत्रार्थे**ऽर्थान्तरन्यास**माह-एकरु(क?)क्षष्ट-(स्थि ?) तान् गुणान् सञ्चरतो-भ्रमतः । कथम् ? यथेष्टं - स्वेच्छया को निवारयति-निषेधयति ? नैव कश्चित् ॥१४॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ? ॥१५॥

किमत्र चित्रं - किमाश्चर्यमेतस्मिन् यदि-यद् न नीतं-न गमितम् । किं तत् ? मनः-चित्तम् । कस्य ? ते - तव । कं न नीतम् ? विकारमार्गं-विकृतिपथम् । कथम् ? मनागपि-स्तोकमपि । काभिः ? त्रिदशाङ्गनाभिः-देवकान्ताभिः । अत्रार्थे**ऽर्थान्तरन्यास**माह-किं का(क)दाचित्-कस्मिंश्चित् काले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्दराद्रिशिखरं-मेरुशृङ्गं चलितम् ? नैव कम्पितम् । केन ? कल्पान्तकालमरुता-युगक्षयसमयवायुना । कीदृशेन ? चलिताचलेन-कम्पितापरगिरिणा । यादृशं मेरुशृङ्गं तादृशं भगवन्मनः ॥१५॥

प्रकास(श)कत्वादपूर्वदीपत्वं भगवतो वर्णयितुमाह-

निर्द्धूमवर्त्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताच[ला]नां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

हे नाथ ! स्वामिन् ! दीपः-प्रदीपः अपरो-ऽन्योऽपूर्वो असि-भवसि त्वम् । कीदृशः ? जगत्प्रकाशः-त्रिभुवनोद्योतकः । दीपो हि गृहैकदेशे प्रकाशको भवति । यतो न गम्यो-न पराभवनीयः । केषाम् ? मरुतां-वायूनाम् । कीदृशानाम् ? चलिताचलानां-कम्पितगिरीणाम् । कथम् ? जातु-कदाचिद् यथा । प्रकटीकरोषि-प्रकाशा(श)यसि । किं तत् ? इदं-प्रत्यक्षं जगत्त्रयं-भुवनत्रितयम् । किम्भूतम् ? कृत्स्नं-सर्वम् । कीदृ[श]स्त्वं दीपः ? निर्द्धूमवर्त्तिः-निर्गतौ धूम-वर्त्ती यस्य स तथोक्तः ॥१६॥

सूर्यादपि अधिकत्वं दर्शयितुमाह-

नाऽस्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥

हे मुनीन्द्र ! - गणधरादिसाधुनाथ ! असि-भवसि त्वम् । कीदृशः ? सूर्यातिशायिमहिमा-सूर्यातिशायी-सूरतिरस्कारी महिमा-महत्त्वं यस्य स तथोक्तः । यतो नास्तं-[न] तिरोध(धा)नत्वं कदाचिदुपयासि-उपगच्छसि । सूरो हि सन्ध्यासमये छन्नो भवति, त्वं पुनः सदा प्रकास(श)रूपः । तथा त्वं न राहुगम्यः-तमपराभवनीयो न भवति(सि) । रविश्च ग्रहणकाले तमसा पराभूयते । तथा त्वं सहसा-सन्ततं युगपद्-एककालं जगन्ति-त्रीणि भवनानि अधोमध्यमोद्र्ध्वरूपाणि स्पष्टीकरोषि-प्रकाशयसि । रविः पुनर्भुवनैकदेशं क्रमेण सततं प्रकाशयति । तथा त्वं नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः-अम्भोधरा-मेघास्तेषामुदरं-कुक्षिः, तेन तस्मिन् वा निरुद्धो-ऽपनीतो महान्-बृहत् प्रभावः-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतापो यस्य स तथोक्तः । आदित्यस्त्वेतद्विपरीतो भवति अतः सूर्यातिशायिमहिमा त्वम् ॥१७॥

इदानीं भगवतो मुखपद्मस्याऽपूर्वशशाङ्करूपतां स्तवकारो वर्णयति-

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम्॥१८॥

हे जिन ! तव मुखाब्जं-मुखकमलं विभ्राजते-विशेषेण विविधं वि(वा) द्योतते । कीदृशम् ? अनल्पकान्ति-गुरुदीप्ति गुरुकमनीयं च । किम्भूतं सद् ? अपूर्वशशाङ्कबिम्बं-अ[न]न्यचन्द्रमण्डलं, यतो नित्योदयं-सर्वदोदितम् । चन्द्र-मण्डलं तु रात्र्युदयम् । तथा दलितमोहमहान्धकारं - दलितो-नासि(शि)तो मोह एव-अज्ञानमेव महान्धकारो-गुरुतमो येन तत् तथोक्तम् । चन्द्रबिम्बं तु मोहतमो विनाशयितुं न शक्तं भवति । तथा न गम्यं-न पराभवनीयम् । कस्य ? राहुवदनस्य-तमोमुखस्य । कर्तरि षष्टीयं, 'कृत्यानां कर्त्तरि चे'ति । तथा न वारिदानां-मेघानां गम्यं-पराभवनीयम् । तत्पराभवोत्तीर्णत्वात् । चन्द्रबिम्बं तु राहुमुखस्य मेघानां च गम्यं भवति, भक्षणादावरणाद्वा ॥१८॥

रात्रौ चन्द्रस्य दिने च रवेर्भगवतो मुखचन्द्रे सति निरर्थकत्वं स्तवकारो वर्णयति-

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ ! ।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ?
॥१९॥

हे नाथ ! - स्वामिन् ऋषभ ! किं शशिना - किं प्रयोजनं चन्द्रेण ? कासु ? शर्वरीषु-रात्रिषु । विवस्वता वा - आदित्येन वा किं प्रयोजनं ? क्व ? [अह्नि]- दिने । न किञ्चित् । केषु सत्सु ? तमस्सु-ध्वान्तेषु । किम्भूतेषु ? युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु-त्वद्वक्त्रचन्द्रविनासि(शि)तेषु । तमोविनाशनं हि चन्द्र-सूर्यमसोः (सूर्य-चन्द्रमसोः) कार्यं, तच्च त्वन्मुखचन्द्रेणैव कृतं, अतो निःप्रयोजनौ । तावदत्रार्थेऽर्थान्तरन्यासमाह-कियत् कार्यं-किं प्रयोजनं, न किमपि । कैः ? जलधरैः-मेघैः । कीदृशैः ? जलभारनम्रैः - उदकसंघातनतैः । क्व ? जीवलोके - जन्तुनिवासे जगति । कीदृशे ? निष्पन्नशालिवनशालिनि-निष्पन्नानि यानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शालिवनानि-कलमव्रीहिसत्कानि क्षेत्राणि तैः । सा(शा)लते-शोभते यः स तथोक्तः, तस्मिन् । शालिवा(व)नानामुपलक्षणत्वाद् यदा किल निष्पन्नसर्वशस्य सम्पन्नो भवति प्रकारान्तरेण जीवलोकः, किं प्रयोजनं जलनम्रमेघैः, सत्कार्यस्य सिद्धत्वात् । एवं किं प्रयोजनं शशि-सूर्याभ्यामिति ॥१९॥

हरिहरब्रह्मादिदेवेभ्यो भगवतोऽतिशायि ज्ञानं कविर्वर्णयितुमाह-

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजो महामणिषु याति यथा महत्त्वं नैवं तु काचस(श)कले किरणाकुलेऽपि
॥२०॥

हे भगवन् ! यथा-येन प्रकारेण त्वयि-भवति यथावस्थितार्थपरिच्छेदको बोधो विभाति-विशेषेण शोभते, गतरागत्वाद् भगवतः, नैवं-नैव तथा-तेन प्रकारेण विभाति ज्ञानम् । केषु ? हरिहरादिषु नायकेषु-विष्णु-शङ्कर-ब्रह्मादिषु प्रभुषु, सरागत्वान्मोहोपेतत्वाच्च । ज्ञानं च कीदृशं ? कृतावकाशं-विहितप्रकाशं धर्माधर्मादेः । न च सरागस्य मूढस्य चाज्ञानं विहितप्रकाशं भवति । अत्रार्थेऽ-**र्थान्तरन्यास**माह-तेजो-धाम यथा-येन प्रकारेण महत्त्वंमहिमानं बृहत्त्वं याति-प्राप्नोति । कासु?(केषु?)महामणिषु-महारत्नेषु इन्द्रनीलादिषु, तथा काचस(श)-कलेषु-काचखण्डेषु पुनर्नैवं-नैवं(व) तेजो-महत्त्वं याति । कीदृशेऽपि ? किरणा-कुलेऽपि-रश्मिव्याप्तेऽपि । काचस(श)कलतुल्या हरिहरादयः, कथं तथा ज्ञानं भवेदिति ॥२०॥

वक्रोक्त्या भगवतो मनोहारित्वं हरिहरादिभ्यः स्तवकारो वर्णयति-

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्ष(क्षि)तेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥

अहमेवं मन्ये-जाने हे नाथ ! - स्वामिन् ! वरं-प्रधानं हरिहरादयो-विष्णुशङ्करादय एव दृष्टा-अवलोकिताः, किं भवता दृष्टेन ?। यतो येषु हर्यादिषु दृष्टेषु हृदयं-मनः तोषं-प्रीतिं उपैति-गच्छति । क्व ? त्वयि-भवति, त्वय्येव प्रीतिं करोति, नान्यत्रेत्यर्थः । किं प्रयोजनं वीक्ष(क्षि)तेन-दृष्टेन ?। केन ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवता-त्वया । कस्याम् ? भुवि-पृथिव्याम् । येन भवद्वीक्षणेन-करणेन हेतुना वा नान्यो-ना[परो] मतो(नो)-मानसं हरति-रञ्जयति । क्व ? भवान्तरेऽपि। आस्तामिह जनम्नि(न्मनि), जन्मान्तरेऽपि । अनेन भगवति दृष्टे सति अन्यो न चित्ते विशति तथाविधगुणाभावादिति दर्शितम् ॥२१॥

साम्प्रतं सर्वजननीपुत्रातिशायित्वं भगवतो वर्णयति-

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्ररस्मिं(श्मिं)
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

जनयन्ति-प्रसवन्ति । कानि ? स्त्रीणां शतानि-बह्व्यो योषितः । कान् ? पुत्रान्-सूनून् । कियतः ? शतशः-अनेकशतानि । केवलं त्वदुपमं-भवत्समानं सुतं-पुत्रं न प्रसूता-न जनितवती । काऽसौ ? जननी-माता । किम्भूता ? अन्या-मरुदेव्यपरा । अत्रार्थे**ऽर्थान्तरन्यास**माह-सर्वा:-सकला दिशाः-आशा दधति-बिभ्रति । कानि ? भानि-नक्षत्राणि । सहस्त्ररस्मिं(श्मिं)-आदित्यं पुनः प्राच्येव-पूर्वैव दिग्-आसा(शा) जनयति-प्रसवति, नाऽन्या दिक् । कीदृशम् ? स्फुरदंशुजालं-प्रसरत्किरणनिकरम् । यादृशो रविस्तादृशो भगवान्, यादृशी प्राची तादृशी मरुदेवी भगवतीति ॥२२॥

इदानीं भगवतः परमपुरुषत्वं मृत्युज(ञ्ज)यत्वं मुक्तिमार्गत्वं च स्तवकारो वर्णयति-

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पु(प)रस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयं[ति] मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥२३॥

मुनयो-जगतस्त्रिकालावस्थावि(वे)दिनस्त्वां-भवन्तं आमनन्ति-प्रतिपादयन्ति-अभ्यस्यन्ति वा । किम्भूतम् ? पुमांसं-पुरुषम् । कीदृशम् ? परमं-प्रकृष्टम् । तथाऽऽदित्यवर्ण(र्णं)रवो[1] --- । [उ]पलभ्य-ज्ञात्वा प्राप्य वा

१. अत्र टीका त्रुटिता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनयोर्ज(ज)यन्ति-अभिभवन्ति । कम् ? मृत्युं-मरणम्, मरणभाजो न भवन्ति, मोक्षगमनात् । कथमुपलभ्य ? सम्यग्-ज्ञानादिपूर्वकं च । तथा हे मुनीन्द्र ! -गणधरादिसाधुनाथ ! नान्यो-नापरोऽस्ति । कोऽसौ ? पन्था-मार्गः । कस्य ? शिवपदस्य-मुक्तिस्थानस्य । कीदृशः ? शिवः-क्षेमो-निरपायमि(इ)त्यर्थः । त्वां विहाय-त्वत्सेवया-त्वद्वचनानुष्ठानेन वा मोक्षावाप्तेः, इत्यनेन परदर्शनानि निराकृतानि द्रष्टव्यानि, तेषां मोहान्धत्वेनान्यथा वचोधात् (?) ॥२३॥

अधुना एकस्यापि भगवतो अनेकत्वं गुणद्वारकं स्तवकार आह-

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसङ्ख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानः(न)श्व(स्व)रूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

हे न्ना(ना)थ ! सन्तो-विद्वांसस्त्वां-भवन्तं प्रवदन्ति-प्रतिपादयन्ति । किम्भूतम् ? ब्रह्माणं-पद्मयोनिं, ज्ञानसम्पन्नत्वात् । तथेश्वरं-महेश्वरं, अणिमाद्यै-श्वर्ययुक्तत्वात् । तथाऽनन्तं-वासुदेवं, अलब्धपरत्वात् । कीदृशम् ? अनन्त(ङ्ग)-केतुं-कामनाशकम् । तथाऽव्ययं-अक्षयम् । तथा विभुं-व्यापकं, केवलालोकेन व्याप्तचतुर्दशरज्ज(ज्जु)प्रमाणलोकालोकत्वात् । तथाऽचिन्त्यं, भगवत्स्वरूपस्य चिन्तय(यि)तुमशक्यत्वात् । तथाऽऽद्यं, धर्मस्याऽऽदौ तत एव प्रवृत्तेः । तथाऽसङ्ख्यं, न विद्यते ज्ञानादेः सङ्ख्याऽस्येत्यसङ्ख्यम्, एतावत्(द्) ज्ञानं सुखं दर्शनं वा भग[व]तः परिच्छेत्तुमशक्यत्वात् । तथा योगीश्वरं-ध्यानमार्ग-प्रविष्टनरनायकम् । यतो विदितयोगं-ज्ञान(त)धर्मध्यानादिव्यापारम् । तथाऽनेकं, उक्तक्रमेणाऽनेकरूपत्वात् । तथैकं, स्वरूपेणैकरूपत्वात् । विरोधश्चात्रैवमुद्भावनीयो यद्यनेकं कथ[मेक]मनेकत्वात् । [यद्येकं कथमनेकमेकत्वात् ।] नैक[त्वाऽनेक]त्वे हि परस्परविरुद्धे । विरोधश्च पर(रि)हृत एव । तथा ज्ञानस्वरूपं-ज्ञानमयं अस्त्येव, कर्मक्षयेण शरीराभावात् । तथाऽमलं-निर्मलं, रागादिमलरहितत्वात् ॥२४॥

इदानीं पुरुषचतुष्टयरूपत्वं तद्गुणयोगेन भगवतो दर्शयितुमाह-

बुद्धस्त्वमेव विबुद्धा(धा)र्चित ! बुद्धिबोधात्
त्वं शङ्करोऽषि(सि) भुवनत्रयशङ्करत्वात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धाताऽसि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

हे भगवन् !-ऐश्वर्यादिगुणयुक्त ! त्वमेवाऽसि । कोऽसौ ? बुद्धो देवताविशेषः, बुद्ध्यते स्म तत्त्वमित्यन्वर्थत्वात् । कुतः ? बुद्धिबोधाद्-बुद्ध्या-केवलज्ञानेन सकलतत्त्वपरिच्छेदात् । कीदृश !? विबुधार्चित ! - स(श)क्रादि देवसंघातपूजित ! । तथा त्वं-भवान् शङ्करोऽसि-शिवो भवसि । कस्माद् ? भुवनत्रयशङ्करत्वाद्-जगत्त्रयसुखकारित्वात् । तथा हे धीर !-ज्ञानराजिन् ! धाता-श्रेष्ठोऽसि-भवसि त्वम् । कुतः ? शिवमार्गविधेर्विधानाद्-मोक्षपथसृष्टेः करणात् । तथा त्वमेवाऽसि-भवसि । कीदृशः ? पुरुषोत्तमः-पुरुषाणां मध्ये उत्तमः-उत्कृष्टः पुरुषोत्तमः सर्वनरप्रधान इत्यर्थः, अन्यत्र विष्णुः । कथम् ? व्यक्तं-स्पष्टम् । पूर्वोक्तगुणैर्देवचतुष्टयमयत्वं दर्शितम् ॥२५॥

इदानीमनेकगुणैः कृत्वा भव(भगव)तोऽतिशायित्वख्यापनाय पुनः पुनर्नमस्कारमाह कविः-

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ ! तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

नमो-नमस्कारोऽस्तु । कस्मै ? तुभ्यं-भवते । किम्भूताय ? त्रिभुवनार्त्तिहराय-त्रिजगज्जन्तुपीडानाशकाय हे नाथ ! - स्वामिन् !। तथा तुभ्यं नमो-भवते नमस्कारो भवतु । कीदृशाय ? क्षितितलामलभूषणाय-भूतलनिर्मलाभरणाय । तथा तुभ्यं नमः पूर्ववत् । कीदृशाय ? परमेश्वराय-प्रधानप्रभाव(भवे) । कस्य ? त्रिजगतः-त्रिभुवनस्थजन्तूनां रक्षणादिसमर्थत्वात् । तथा तुभ्यं नमः पूर्ववत् । हे जिन ! - रागादिजेतः !। कीदृशाय ? भवोदधिशोषणाय-संसारसमुद्र[नि]र्नाशनाय, आत्मनोऽन्येषां च ॥२६॥

साम्प्रतं निःशेषगुणाश्रितत्वं दोषनिराकृतत्वं च भगवतो दर्शयितुमाह कविः-

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं शंस्त्रि(संश्रि)तो निरवकास(श)तया मुनीश !।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिद्वी(दपी)क्षितोऽसि ॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे मुनीश ! - गणधरादिसाधुनाथ ! को विस्मयोऽत्र ? - किमत्राश्चर्यम् ?। यदि त्वं-भगवान् संश्रितः-संस(से)वितो नाम-अहो ! व्यक्तं वा । कैः ? गुणैरतिशायिज्ञानादिभिः । किम्भूतैः ? अशेषैः-सर्वैर्न कियद्भिः । कया ? निरवकाशतया-निर्विषयतया, तथाविधोऽन्यो विषयो नास्ति यः समग्रगुणानामाधारः । तथा हे मुनीश ! न कदाचिद्-न कस्मिंश्चित् काले वीक्ष(क्षि)तोऽसि-अवलोकितोऽसि । क्व ? स्वप्नान्तरेऽपि-स्वप्नमध्येऽपि, आस्तां जागरमाणैः । कैः? दोषैः । कीदृशैः? उपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः-प्राप्तनानाप्रकारा-धारोत्पन्नदर्पैः ॥

इदानीं षड्भिः श्लोकैर्भगवतो विभूतिं वर्णयितुमाह स्तवकारः-

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्त्ति ॥२८॥

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्ररस्मेः(श्मेः) ॥२९॥

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-मुच्चैःस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं प्रख्यापयः(य)त् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ति-पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३२॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र ! धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृग्(क्)प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥३३॥

हे जिनेन्द्र ! - सामान्यकेवलिनाथ ! यथा-येन प्रकारेण तव-भवतो विभूतिः-ऐश्वर्यमभूद्-बभूव । कथम् ? इत्थं-अनेन पूर्वप्रकारेण । कस्मिन् ? धर्मोपदेशनविधौ-ज्ञानोत्पत्तिसमनन्तरचतुर्विधधर्मकथनकाले । तथा - तेन प्रकारेण नापरस्य-नान्यस्य बुद्धादेः । अत्रार्थेऽर्थान्तरन्यासमाह-यादृग्-यादृशी प्रभा-दीप्तिर्दिनकृतो-रवेर्भवति । कीदृशी ? प्रहतान्धकारा-नासि(शि)ततमाः तादृक्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तादृशी । कुतो भवति ? ग्रहगणस्य-शुक्रादिवृन्दस्य । कीदृशः ? विकासिनोऽपि-प्रकास(श)वतोऽपि । सूर्यतुल्यो भगवान्, शेषग्रहतुल्या बुद्धादयो देवाः ॥३३॥ तामेव दर्शयति-

भवतः-ते रूपं-मूर्तिवि(र्वि)भाति-शोभते । कथम् ? नितान्तं-अतिशयेन । कीदृशम् ? अमलं-निर्दोषम् । तथोन्मयूखं-उद्गतकिरणजालं, तथोच्चैरशोकतरुसंश्रितं-उच्चतरु(र)कंकेल्लिवृक्षासन्नवर्तिनम् । कीदृशं ? स्पष्टोल्लसत्किरणं प्रसरद्-व्यक्तरश्मिजालं, अत एवाऽस्ततमोवितानं-निराकृतान्धकारसंघातं । तथा पयोधर-पार्श्ववर्ति-मेघनिकटावस्थितम् ॥२८॥

तथा तव-भवतो वपुः-शरीरं विभ्राजते-विशेषेण शोभते । कीदृशं ? कनकावदातं-स्वर्णवर्णम् । क्व स्थितं ? सिंहासने-हरियुक्तभद्रपीठे । कीदृशे ? मणिमयूखशिखाविचित्रे-रत्नानाना(रत्नानां) किरणज्वालाविविधचित्रे । किमिव शोभते ? बिम्बमिव-मण्डलमिव । कस्य ? सहस्ररस्मे(श्मे):-आदित्यस्य । क्व स्थितम् ? तुङ्गोदयाद्रिशिरसि-उच्चोदयाचलमस्तके । कीदृशम् ? वियद्विलसदंशु-लतावितानं-आकास(श)प्रसरत्-किरणवि(व)ल्लिसंघातम् ॥२९॥

तव वपुः-भवतः शरीरं विभ्राजते-विविधं राजते । कीदृशं ? कुन्दावदात्तं(त)चलचामरचारुशोभं-कुन्दकुसुमनिर्मलं(ल)चञ्चलव्यजनसो(शो)भनश्रीकम् । तथा कलधौतकान्तं-सुवर्णकमनीयम् । किमिवाभाति ? तद(ट)मिव-वपु इव (?) । कीदृशं ? उच्चैः-उच्चम् । कस्य ? सुरगिरेः-मेरोः । तथा शातकौम्भं - सुवर्णमयम् । तथा उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधारं-उद्यच्छशाङ्कवद्-उद्गच्छच्चन्द्रस्येव शुचयो-निर्मला वारिधारा-जलराजयो यत्र तत् तथोक्तम् । चामरस्य साम्यं दर्शितम् ॥३०॥

तथा छत्रत्रयं-आतपत्रत्रयी तव-भवतो विभाति-विविधं शोभते । कीदृशं ? शशाङ्ककान्तं-चन्द्रनिर्मलम् । तथोच्चैः स्थितं-उपरिव्यवस्थितम् । तथा स्थगितभानुकरप्रतापं-आच्छादितरविकिरणप्रभावं । तथा मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्ध-शोभं-मुक्ताफलप्रकरजालेन मौक्तिकविसरस्तबकेन विशेषेण वृद्धा-वृद्धिं गता शोभा-श्रीर्यस्य तत् तथोक्तम् । किं कुर्वन्(त्) ? प्रख्यापयत्-प्रकटयत्, त्रिजगतः-त्रिभुवनजन्तूनां परमेश्वरत्वं-प्रकृष्टप्रभुत्वं, छत्रत्रयं हि त्रिभुवनप्रभुत्वलक्षणम् ॥३१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे जिनेन्द्र !-तीर्थकरदेव ! तत्र-प्रदेशे विबुधा-देवाः पद्मानि-काञ्चनकमलानि परिकल्पयन्ति-रचयन्ति, यत्र-प्रदेशे तव पादौ-चरणौ पदानि-न्यासान् धत्तः-कुरुतः । कीदृशौ ? उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्तिपर्युल्लसन्नख-मयूरवशिखाभिरामौ-उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जस्येव विकसितसौवर्ण(र्णा?) कृतिन् (?) पद्मस्येव कान्तिर्यासां तास्तथोक्ताः, ताश्च ताः पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाश्च-प्रसरन्नखकिरणज्वालाश्च ताः, ताभिरभिरामौ-अभिरमणीयौ अभू(?) तौ तथोक्तौ ॥३२॥ अर्थापेक्षयैकं कुलकम् । यद्वा भिन्नक्रिया - भिन्ना एवैते श्लोकाः ॥

जिनाश्रितानां करिभयाभावमाहात्म्यसूचनेन कविः-

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३४॥

नो-न भवति-उ[त्प]द्यते । किं तद् ? भयं-त्रासः । केषां ? भवदाश्रितानां-युष्मत्सेवाप्राप्तानाम् । किं कृत्वा ? दृष्ट्वा-ऽवलोक्य । कम् ? इभं-करिणम् । किं कुर्वन्तं ? आपतन्तं-आगच्छन्तम् । कीदृशं ? उद्धतं-दर्पोद्धुरम् । तथा ऐरावताभं-इन्द्रकरिसमानम् । कथम्भूतं ? श्च्योतन्मदाविलविलोल-कपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपं-श्च्योतन्मदेन-क्षरद्दानजलेन आविलं-स्या(श्या)मलं यत् कपोलमूलं-गल्लप्रथमभागः, तस्मिन् मत्तभ्रमद्भ्रमराः क्षरच्चलद्भृङ्गाः, तेषां नादः-शब्दः, तेन विवृद्धो-वृद्धिं गतः कोपः-क्रोधो यस्य स यथोक्तस्तम् ॥३४॥

भवतः पादाश्रयणस्य फलमाह स्तवकारः-

मत्तेभकुम्भगलदुज्ज्वलशि(शो)णिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः ।
बद्धः(द्ध)क्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३५॥

हरिणाधिपोऽपि-सिंहोऽपि, आस्तामन्यः कर्यादिः । नाक्रामति-नाश्लिष्यति । कं ? क्रमयुगाचलं-पादपद्मद्वयं गिरिमाश्रितं-आरूढं तत्सम्बद्धम् । कस्य ? ते-तव । कीदृशं ? क्रमगतं-फालाविषयम् । कीदृशः ? बद्धक्रमः-रचितफालः । तथा मत्तेभकुम्भगलदुज्वलशोणिताक्तमुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत्तेभस्य-क्षीबकरिणः कुम्भः-शिरःस्थलं, तस्माद् गलत्-क्षरद् उज्ज्वलं-निर्मलमच्छं रक्तं-रुधिरं, तेनाक्तानि-अवलिप्तानि यानि मुक्ताफलानि-मौक्तिकानि, तेषां प्रकरः-संघातः, तेन भूषितो-ऽलङ्कृतो भूमिभागो-भूप्रदेशो येन स तथोक्तः । अनेन विशेषणेनाऽस्याऽतिशूरत्वादिगुणाः प्रतिपादिताः ॥३५॥

साम्प्रतं प्रचण्डाग्निदर्पहरत्वेन भगवना(न्ना)म्नो जलरूप[त्व]माह-

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्फु(त्स्फु)लिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सन्मुखमापतन्तं
त्वं ना (त्वन्ना)मकीर्तनजलं स(श)मयत्यशेषम् ॥३६॥

हे जिन ! त्वन्नामकीर्तनजलं-भवदभिधानोच्चारणोदकं स(श)मयति-निवर्तयति । कं ? दावानलं-दावाग्निम् । कीदृशं ? कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्नि कल्पं-ज(ल)यकालवातोद्भटाग्निसदृशम् । तथाऽशेषं-समस्तम् । तथा ज्वलितं-प्रदीप्तं । तथोज्ज्वलं-उद्दीप्तम् । तथोत्स्फुलिङ्गं-उद्गताग्निकणम् । किं कुर्वन्तं ? आपतन्तं-आगच्छन्तम् । कथं ? सन्मुखं-अभिमुखम् । किं कुर्वन्तमिव ? जिघत्सन्त(जिघत्सु)मिव-भक्षितुमिव । किं तत् ? विश्वं-जगत् । अनेन च विशेषणवृन्देणाऽतिप्रचण्डत्वेन केनाप्यप्रतिसंहार्यत्वं अग्नेर्दर्शयति ॥३६॥

अधुना क्रोधोद्भटादिगुणस्य सर्पस्य क्रमयुगो(गा)क्रमणेन भगवंना(वन्ना)-म्नो नागदमनीत्वमाह स्तवकारः-

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
ना(आ)क्रामति क्रमयुगेन निरस्तस(श)ङ्कः
त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥३७॥

स नर आक्रामति-आप्नोति-उपमर्दयति । केन ? क्रमयुगेन-पादद्वयेन । कीदृशः सन् ? निरस्तशङ्को-ऽपगतखादनसन्देहः । कमाक्रामति ? फणिनं-नागम् । कीदृशं ? रक्तेक्षणं-अरुणनेत्रं, तथा समदकोकिलकण्ठनीलं-मत्तपिकगल-कृष्णम् । तथा क्रोधोद्धतं-कोपोद्भटं, तथोत्फणं-उद्गतफणाभोगं, तथाऽऽपतन्तं-आगच्छन्तम् । यस्य पुंसः पुरुषस्य हृदि-चित्ते वर्तते । कोऽसौ ? त्वन्नामनागदमनी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवदभिधानसर्पदमनौषधीविशेषः ॥३७॥

इदानीं भगवन्नाम्न एवोच्चारणस्य शक्रसैन्यभेदकत्वमाह कविः-

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं त्वत्कीर्तनात् तम इवाशु भिदामुपैति ॥३८॥

भूपतीनां-नृपाणां बलं-सैन्यं चतुरङ्गं भिदां-भेदमुपैति-गच्छति । कस्मात् ? त्वन्नामकीर्तनाद्-भवदभिधानोच्चारणात् । किमिव ? तम इव-अन्धकारमिव । कीदृशं सद् ? उद्यद्दिवाकर [मयूख]शिखापविद्धं-उद्गच्छद्रविकिरणपरम्पराहतं । कीदृशानां भूपतीनाम् ? बलवतां-शक्तिमतामपि । कीदृशं बलं ? वल्गत्तुरङ्ग-गजगर्जितभीमनादं-वल्गत्तुरङ्गाश्च-इतस्ततश्चलदश्वाश्च गजाश्च-करिणश्च ते तथोक्ताः, तेषां गर्जितं, तदेव भीमो-भयकारको नादः-शब्दो यत्र तत् तथोक्तम् । क्व ? आजौ-सङ्ग्रामे ॥३८॥

इदानीं भगवत्पादसेविनां सङ्ग्रामे जयमाह स्तुतिकारः-

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणित[वारि]वाह-वेगावतारतरुणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षाः त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥३९॥

युद्धे-रणे जयं-शत्रुपराभवं लभन्ते-प्राप्नुवन्ति । के ? त्वत्पादपङ्कज-वनाश्रयिणो-भवच्चरणपद्मखण्डसेविनो नराः, भवच्चरणपद्मसम्यक्सेविनो वा । **समाश्रयिण** इति पाठः । कीदृशाः सन्तः ? विजितदुर्जयजेयपक्षाः-पराभूतदुःख-पराभवनीयशत्रुपक्षाः । कीदृशे युद्धे ? कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतार तरुणातुरयोधभीमे कुन्ताग्रेण भिन्ना-विदारिता ये गजाः-करिणस्तेषां यच्छोणितवारि-रक्तजलं तस्य वाहः-प्रवाहस्तस्मिन् वेगावतारेण-जवावतरणेन तरुणा-युवान आतुरा-भीता ये योधाः-सुभटास्तैर्भीमे-भयकारके । अनेनात्यन्तभयकारणत्वं युद्धस्य दर्शितम् ॥३९॥

इदानीं समुद्रप्रतिष्ठानां यानपात्रारूढानां भगवच्चिन्तनान्मज्जनभयं न भवतीति दर्शयितुमाह कविः-

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रङ्गतरङ्गशि[ख]रस्थितमानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४०॥

नरा व्रजन्ति-गच्छन्ति-समुद्रमुल्लङ्घयन्तीत्यर्थः । किं कृत्वा ? विहाय-त्यक्त्वा । कं ? त्रासं-भयं मज्जनादेः । कुतो हेतोः ? स्मरणात्-चिन्तनात् । कस्य ? भवतः-तव । क्व ? अम्भोनिधौ-समुद्रे । कीदृशे ? क्षुभितभीषणनक्र-चक्रपाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ-क्षुभिताश्चलिता भीषणा-भयानका ये नक्रचक्र-पाठीनपीठाः-जीवविशेषाः, तैर्भयं-भीतिं ददाति स तथोक्तः, तथोल्बण-उद्भटो वाडवाग्निर्वरदावानलो यस्मिन् स तथोक्तः, पश्चात् पदद्वयस्य कर्मधारयः समासः, तस्मिन् । कीदृशाः सन्तः ? रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्राः-रङ्गन्त-श्चलन्तो ये तरङ्गाः-कल्लोलास्तेषां शिखरं-अग्रं तस्मिन् स्थितं यानपात्रं-प्रवहणं येषां ते तथोक्ताः, ईदृशा अपि ॥४०॥

इदानीं भगवतः पादपद्मरजःपीयूषशरीरावगुण्डनस्य नराणां फलं दर्शयति स्तवकारः-

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः
सो(शो)च्यां दशामुपगताः श्च्युतजीविताशाः ।
त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४१॥

मर्त्या-मनुष्या भवन्ति-जायन्ते । कीदृशाः ? मकरध्वजतुल्यरूपाः-कामसमानाकाराः । कथम्भूताः सन्तः ? त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहाः -भवच्चरणपरागपीयूषम्रक्षितस(श)रीराः । पूर्वं कीदृशाः सन्तः ? उपगताः-प्राप्ताः । कां ? दशां-अवस्थाम् । कीदृशीं ? शोच्यां-शोचनीयां मरणयोग्याम् । किम्भूताः ? श्च्युतजीविताशाः-त्यक्तजीवनवाञ्छाः । तथोद्भूतभीषणजलोदर-भारभुग्ना-उत्पन्नभयङ्करोदरव्याधिविशेषप्राग्भारकुटिलीभूताः ॥४१॥

अधुना स्तवकारो भगवन्नाममन्त्रस्मरणस्य बन्धनभयापहारफलमाह-

आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४२॥

मनुजा-मानवाः स्वयं-आत्मन एव विगतबन्धभया-अपगतबन्धनत्रासा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवन्ति-सन्ति । कथं ? सद्यः-शीघ्रतरम् । किं कुर्वन्तः-स्मरन्तः चिन्तयन्तः । कं ? त्वन्नाममन्त्रं-भवदभिधानविद्याम् । कथं ? अनिसं(शं)-अनवरतम् । कीदृशाः सन्तः ? उरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गाः-महाशृङ्खलावृतदेहाः । किं यावद् ? आपादकण्ठं-चरणगलं यावत् । पादाभ्यां प्रभृति गलप्रदेशं यावदित्यर्थः । तथा बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः-महाप[1]........................ गाढं-अतितराम् ॥४२॥

अधुना सर्वं मत्तकरिप्रभृतिभयापहार(रः)फलं स्तवपठनस्य स्तवकारः प्राह-

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-सङ्ग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४३॥

तस्य-नरस्य मतिमताशु-(मतिमतः आशु)-शीघ्रं भयं-त्रासो विनाशं-क्षयं भियेव-भयेवेन (भयेनेव) उपयाति-गच्छति, यो मतिमान्-बुद्धिमान् स्तवं-स्तवनमिमं-प्रत्यक्षं अधीते-पठति । कथम्भूतं ? तावकं-भवदीयम् । मत्तद्विपेन्द्र-मृगराजदवानलाहिसङ्ग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थं-क्षीबकरिराज-सिंह-दवाग्नि-सर्प-रण-समुद्र-जलोदर-संयमनप्रभवम् ॥४३॥

इदानीं स्तोत्रमालायाः कण्ठस्थितायाः फलमाह स्तवकारः, आत्मनाम च प्रदर्शयति-

स्तोत्रस्त्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्त्रं
तं मानतुङ्गमवसा(शा) समुपैति लक्ष्मीः ॥४४॥

तं पुरुषं, कीदृशं ? मानतुङ्गं-पूजामहान्तं अहङ्कारबृहन्तं वा । पुरुषस्याऽहङ्कारः प्रशस्यते[2] - - - - - निरहङ्कारस्य लोके भस्मतुल्यत्वात्, न परलोकमार्गे । लक्ष्मीः-श्रीः समुपैति-प्राप्नोति-आश्लिष्यति । कीदृशी ? अवसा(शा)-अपराधीना सती । यो जनो-नरो धत्ते-बिभर्ति । कां ? स्तोत्रस्त्रजं-स्तवनमालाम् । कस्य ? तव-भवतः । हे जिनेन्द्र ! - सकलकेवलिनाथ !। कथम्भूतां सतीं धत्ते ? कण्ठगतां-गलप्रदेशस्थिताम् । क्व ? इह-जगति ।

१. पाठः त्रुटितः । २. पत्रं त्रुटितम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथं ? अजश्रं-अनवरतम् । कीदृशीं ? निबद्धां-र[चितां][१]- - - - - - - तव । कया ? भक्त्या-प्रकृष्टभावेन । केन ? मया-कर्त्रा । कीदृशीं ? विविधवर्णविचित्रपुष्पां-विविधा-नानाप्रकारा ये वर्णा-अक्षराणि, त एव विचित्राणि-नानारूपाणि पञ्चवर्णानि पुष्पाणि यस्यां सा तथोक्ता, ताम् । मालाऽपि सूत्रग्रथिता पञ्चवर्णजात्यादिपुष्पकलिता च कण्ठे-गलप्रदेशे ध्रियते ॥

श्रीखण्डेल्लकगच्छसम्बन्धि-श्वेताम्बर श्रीशान्तिसूरिविरचित-मानतुङ्गाचार्य-कविकृत-भक्तामराख्यस्तववृत्तिः परिसमाप्ता ॥

—x—

१. पाठः त्रुटितः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञातकर्तृका

भक्तामरस्तव-सुखबोधिका वृत्ति:

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

भक्तामरस्तव परनी आ टीकानी ९ पानांनी, अशुद्धिप्रचुर प्रति निजी संग्रहमां मळी. कर्ता के लेखकनुं नाम नथी. अनुमानत: १८मा शतकमां लखायेली लागे छे. आ वृत्ति आम तो परम्परागत वाचनानुसारी ज छे. परन्तु आमां पण केटलांक स्थळोए महत्त्वना पाठभेदो जोवा तो मळे ज छे. जेमके-

पद्य ६मां 'मुखरीकुरुते' प्रयोग च्वि-प्रत्ययान्त होवानुं जाणीतुं छे, आ वृत्तिमां पण ते प्रमाणे अर्थ करेलो ज छे. छतां अहीं अच्व्यन्त प्रयोगरूपे पण ते दर्शावेल छे : 'मुखरी-वाचाल: कुरुते' आ रीतनो पदच्छेद अने अर्थ मनोरम पण लागे छे.

पद्य २३मां 'तमस: पुरस्तात्' पाठ मळे छे. प्रसिद्ध अने योग्य पाठ जोके 'परस्तात्' छे. टीकामां पण 'अन्धकारस्य अग्रे अर्थात् मध्यान्ध(मध्येऽन्ध) कारस्य' एवो अर्थ थयो छे.

पद्य २६मां प्रचलित पाठ छे 'जिन ! भवोदधिशोषणाय', अने अहीं जोवा मळतो पाठ 'जनभवोदधिशोषणाय'. अलबत्त, पहेलां 'जिन !' एवो पाठ विवरीने पछी ज 'जन' एवो पाठ दर्शावायो छे. तेनो अर्थ 'जनानां भवोदधि: जनभवोदधिस्तं शोषयतीति' एम कर्यो छे.

एज रीते, पद्य २७मां 'विविधाश्रयजातगर्वै:' एवो पाठ तो स्वीकार्यो ज छे, परन्तु त्यां विकल्पमां 'विबुधाश्रयजातगर्वै:' एम पाठ पण दर्शाव्यो छे, अने तेनी वृत्तिमां 'विबुधानां अन्यदेवानां आश्रय:' एम अर्थ करवामां आव्यो छे. मुख्य पाठ तरीके 'विबुधाश्रय०' अने वैकल्पिक पाठ 'विविधाश्रय०' लेवायो छे.

भक्तामर परनी विविध टीकाओ छे, जेमांथी घणी अप्रकाशित हशे. ते आ रीते प्रकाशमां आवे तो रसप्रद बने तेम छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्तामरप्रणि(ण)तमौलिमणिप्रभाणामिति । **यः** समिति । अस्य व्याख्या-किलेत्यव्ययं पदं सत्यागमनमङ्गलार्थवाचि । अहमपि प्रथमं जिनेन्द्रं स्तोष्ये । किं कृत्वा ? **जिनपादयुगं सम्यक् प्रणम्य** । जिनस्य प्रथमतीर्थकृतः पादौ-चरणौ, तयोर्युगं-युग्मं जिनपादयुगम् । सम्यक् त्रिका(क)रणशुद्ध्या, नत्वा । कथम्भूतं जिनपादयुगं ?, **भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणां उद्योतकम्** । भक्ताश्च तेऽमराश्च भक्तामराः, तेषां प्रणता ये मौलयः, तेषु ये मणयः, [तेषां याः प्रभाः ताः] भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाः, तासां भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणाम् । उद्योतयतीति उद्योतकम् । तत्प्रकाशकमित्यर्थः । पुनः कथम्भूतं जिनपादयुगं ?, दलितपापतमोवितानम् । दलितं-दूरीकृतं पापतमसो वितानं येन तत् दलितपापतमोवितानम् । तत्पुनः किम्भूतं जिनपादयुगं ?, **भवजले पततां जनानां युगादौ आलम्बनम्** । भव एव जलं भवजलम् । तस्मिन् भवजले-संसारसमुद्रे, पतन्तीति पतन्तः, तेषां पतताम् । युगस्य आदिः युगादिः, तस्मिन् युगादौ ।

तं इति कम् ?। यः सुरलोकनाथः(थैः) स्तोत्रैः संस्तुतः । सुष्ठु राजन्ते इति सुराः, तेषां लोको-जगत् स्वर्गः, तस्य नाथैः-प्रभृतिभिः (? भूपतिभिः ?) सुरलोकनाथैः । संस्तुतः-सम्यक् स्तुतः । कथम्भूतं (तैः) सुरलोकनाथैः ?, सकलवाङ्मयतत्त्वबोधात् उद्भूतबुद्धिपटुभिः । 'वाचि विकारो वाङ्मयं, सकलं च तत् वाङ्मयं च सकलवाङ्मयं, तस्य तत्त्वं सकलवाङ्मयतत्त्वं, तस्य बोधः सकल वाङ्मयतत्त्वबोधः, तस्मात् । उद्भूतश्चासौ बुद्धिश्च उद्भूतबुद्धिः, तया पटवः उद्भूतबुद्धिपटवः, तैः । कथम्भूतैः स्तोत्रैः ?, **जगत्त्रितयचित्तहरैः** । जगतां त्रितयं जगत्त्रितयं, जगत्त्रितयस्य चित्तं जगत्त्रितयचित्तं, तस्य हराणि जगत्त्रितय-चित्तहराणि तैः । पुनः किं० स्तौत्रैः ?, उदारैः-प्रधानैः ॥१-२॥ युग्मम् ॥

बुद्ध्येति । हे विबुधार्चितपादपीठ ! अहं विगतत्रपः अस्मि । विबुधैर्देवैः अर्चितं पादपीठं यस्य स विबुधार्चितपादपीठः । वि-विशेषेण गता त्रपा यस्मात् स विगतत्रपः । निर्लज्ज इत्यर्थः । कथम्भूतोऽहम् ?, बुद्ध्या विनाऽपि स्तोतुं-स्तवनं कर्तुं समुद्यतमतिः । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति-बालं विहाय जलसंस्थितं इन्दुबिम्बं-चन्द्रमण्डलं अन्यजनः सहसा ग्रहीतुं क

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छति ? ॥३॥

वक्तुमिति । हे गुणसमुद्र ! ते गुणान् बुद्ध्या सुरगुरुप्रतिमः कः क्षमः-कः समर्थः ? । गुणानां समुद्रः गुणसमुद्रः, तत्सम्बोधनं क्रियते-हे गुणसमुद्र !। सुरगुरुणा प्रतिमीयते इति सुरगुरुप्रतिमः-बृहस्पतितुल्योऽपि । कथम्भूतान् ?, शशाङ्ककान्तान्, शशाङ्कवत् कान्ताः शशाङ्ककान्ताः, तान् शशाङ्ककान्तान् । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति-अम्बुनिधिं-समुद्रं भुजाभ्यां तरीतुं कः अलं-कः समर्थः ? न कोऽपीत्यर्थः । कथम्भूतं अम्बुनिधिम् ?, कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं - कल्पान्तकालस्य पवनः, तेन उद्धता-ऊर्ध्वं गता नक्रचक्रा यस्मिन् स कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रस्तम् ॥४॥

सोऽहमिति । स अहं तथापि भक्तिवशात् तव स्तवं कर्तुं प्रवृत्तः अस्मि सावधानो जातोऽस्मि । कथम्भूतः अहम् ?, विगतशक्तिः अपि, वि-विशेषेण गता शक्तिर्यस्य स विगतशक्तिः । अधुना । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति-मृगः निजशिशोः परिपालनार्थं-स्वपुत्ररक्षार्थं किं न अभ्येति-किं न सन्मुखं याति ? अपि तु अभ्येत्येव । किं कृत्वा ? प्रीत्या-स्वस्नेहेन आत्मवीर्यं-स्वपराक्रमं अविचार्य-न विचार्य इत्यर्थः ॥५॥

अल्पश्रुतमिति । हे मुनीश ! त्वद्भक्तिः एव बलात् मां मुखरी-वाचालः कुरुते । अमुखरं मुखरं कुरुते इति मुखरीकुरुते । कथम्भूतं मां ?, अल्पश्रुतं अल्पं-स्तोकं श्रुतं यस्य सः [तं] अल्पश्रुतम् । पुनः कथम्भूतं मां ?, श्रुतवतां परिहासमा(धाम) । श्रुतं विद्यते येषां ते श्रुतवन्तः, तेषां परिहासस्य धाम-परिहासधाम । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति-किल इति निश्चयेन । यत् कोकिलः मधौ मधुरं विरौति तत् चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः । चारवश्च ताः चूतकलिकाश्च चारुचूतकलिकाः । तासां निकरः-समूहः, स एवैको-ऽद्वितीयो हेतुः चारुः ॥६॥

हे स्वामिन् ! शरीरं भजती(न्ती)ति शरीरभाजः, तेषां पुरुषाणां अशेषं पापं त्वत्संस्तवेन क्षणात् क्षयं उपैति-प्राप्नोतीत्यर्थः । कथम्भूतं पापं ?, भवसन्ततिसन्निबद्धम् । भवानां सन्ततिर्भवसन्ततिः । भवसन्तत्या सं-सम्यक् प्रकारेण निबद्धं-दृष्टं बद्धं भवसन्ततिसन्निबद्धम् । पुनः कथम्भूतं पापं ?, आक्रान्तलोकम् । पुनः किंविशिष्टं पापं ?, उत्प्रेक्षते-पापं कमिव ? सूर्यांशुभिन्नं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शार्वरं-सूर्यस्य अंशवः-[किरणाः] तैः सूर्यांशुभिर्भिन्नं-स्फेटितं सूर्यांशुभिन्नं, शर्वर्यां भवं शार्वरं अन्धकारमिव । कथम्भूतं अन्धकारं ?, आक्रान्तलोकम् । पुनः कथम्भूतं अन्धकारं ?, अलिनीलम् - भ्रमरवत् नीलमित्यर्थः ॥७॥

मत्वेति । हे नाथ ! तव संस्तवनं आरभ्यते-क्रियते । किं कृत्वा ?, इति मत्वा-ज्ञात्वा । इतीति किम् ?, तव प्रभावात् । सतां-सज्जनानां चेतः हरिष्यति । कथम्भूतेन मया ?, तनुधियाऽपि - तनुः-स्वल्पा धीर्यस्य स तनुधीः, तेन । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति-ननु इति निश्चयेन । नलिनीदलेषु उदबिन्दुः मुक्ताफलद्युतिं उपैति-प्राप्नोति । नलिन्या दलानि नलिनीदलानि, तेषु नलिनीदलेषु-कमलनीपत्रेषु । उदस्य बिन्दुः उदबिन्दुः । मुक्ताफलस्य द्युतिः मुक्ताफलद्युतिस्तम् ॥८॥

आस्तामिति । हे जिन ! तव स्तवनं दूरे आस्ताम् । त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि-कष्टानि हन्ति । सहस्रकिरणः - सूर्यः दूरे आस्ताम् । सहस्र(स्रं)-किरणं यस्य स सहस्रकिरणः । सहस्रकिरणस्य प्रभा एव पद्माकरेषु जलजानि विकाशिभाञ्जि कुरुते । पद्मानां आकराः पद्माकराः, तेषु पद्माकरेषु-तडागेषु, जलाज्जातानि जलजानि-कमलानि विकाशं भाजन्तीति विकाशभाञ्जि ॥९॥

नान्येति । हे भुवनभूषण ! हे भूतनाथ ! भूतैर्गुणैर्भवन्तं ऽभिष्टुवन्तः पुरुषाः भुवि-पृथिव्यां भवतः तुल्या भवन्ति इति न अद्भुतं न आश्चर्यम् । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति-ननु इति निश्चयेन । वा-अथवा तेन स्वामिना किम् ? यः स्वामी भूत्याऽऽश्रितं-सेवकं इह विश्वे आत्मसमं न करोति । भुवनस्य भूषणं भुवनभूषणं, तत्सम्बोधनं क्रियते । हे भुवनभूषण !। अथवा भुवनस्य भूषणभूतः भुवनभूषणभूतः, तत्सम्बोधनं क्री(क्रि)यते- हे भुवनभूषण !। अथवा भूतानां नाथ भूतनाथ, तत्सम्बोधनम् ॥१०॥

दृष्ट्वेति । हे स्वामिन् ! जनस्य-लोकस्य चक्षुः । भवन्तं दृष्ट्वा अन्यत्राऽन्यस्मिन् देवे तोषं-सन्तोषं न उपयाति-न प्राप्नोति । कथम्भूतं भवन्तं? अनिमेषविलोकनीयम् । अनिमेषं यथा स्यात्तथा विलोकनीयः ऽन(नि)मेषविलो-कनीयस्तम् । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति-दुग्धसिन्धोः-क्षीरसमुद्रस्य पयः पीत्वा, जलनिधेः-समुद्रस्य, क्षारं जलं असितुम् - पातुम् कः इच्छेत् ? - कः वाञ्छेत् ? कथम्भूतं दुग्धसिन्धोः पयः ?, शशिकरद्युति०, शशिनः कराः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शशिकरा:, तद्वत् द्युतिर्यस्य स, तत् शशिकरद्युति ॥११॥

हे त्रिभुवनैकललामभूत ! यैः परमाणुभिः निर्मापितः - त्वं रचितः असि । खलु-निश्चयेन, तेऽणवः ऽपि-ते परमाणु(ण)वः अपि, पृथिव्यां तावन्त एव, हि इति निश्चयेन । यत्-यस्मात् कारणात्, ते-तव समानं अपरं रूपं नास्ति । त्रिभुवनस्य एकं च तत् ललाम च त्रिभुवनैकललाम-त्रिभुवनैकललामभूत !। कथम्भूतैः परमाणुभिः ? शान्तरागरुचिभिः, शान्तरागस्य-शान्तरसस्य रुचिर्येषां ते शान्तरुचयस्तैः, ऽथवा शान्ता-दूरीभूताः रागस्य रुचिर्येभ्यस्ते शान्तरागरुचयस्तैः ॥१२॥

वक्त्रमिति । हे स्वामिन् ! ते-तव वक्त्रं क्व ? च-पुनः तत् निशाकरस्य-चन्द्रस्य बिम्बं क्व ?। यत् निशाकरस्य बिम्बं वासरे पाण्डुपलासकल्पं भवति । पाण्डु च तत् पलाशं पाण्डुपलाशं, पाण्डुपलाशेन कल्पं पाण्डुपलाशकल्पं, कथम्भूतं वक्त्रं ? सुरनरोरगनेत्रहारि । सुराश्च नराश्च उरगाश्च सुरनरोरगाः, तेषां नेत्रानि(णि) हरन्तीति एवं शीलं सुरनरोरगनेत्रहारि । पुनः कथम्भूतं वक्त्रम् ? निश्शेषनिर्जित-जगत्त्रितयोपमानम् । निश्शेषेण निर्ज्जितं जगत्त्रये उपमानं येन तत् निश्शेषनिर्ज्जितजगत्त्रितयोपमानम् । कथम्भूतं बिम्बं ? कलङ्कमलिनम् ? कलङ्केन मलिनं कलङ्कमलिनम् ॥१२॥

सम्पूर्णेति ॥ हे त्रिजगदीश्वर ! तव गुणाः त्रिभुवनं लङ्घयन्ति-ऽतिक्रामन्ति । त्रीणि च तानि जगन्ति च त्रिजगन्ति, त्रिजगतां ईश्वरः त्रिजगदीश्वरः तत्सम्बोधनं हे त्रिजगदीश्वर !। कथम्भूता गुणाः ? सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलापशुभ्राः । सम्पूर्णं मण्डलं यस्य सः सम्पूर्णमण्डलश्चासौ शशाङ्कश्च सम्पूर्णमण्डलशशाङ्कस्तस्य कलाकलापः सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलापः, तद्वत् शुभ्राः । ये मनुष्या एकनाथं संश्रितान् (संश्रितास्तान्) यथेष्टं सञ्चरतः कः निवारयति ? ॥१४॥

चित्रमिति ॥ हे जिन ! यदि त्रिदशाङ्गनाभिः ते-तव मनः मनाक् अपि-स्तोकमपि विकारमार्ग्गं न नीतं, अत्र किं चित्रम् ?। उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति-कल्पान्तकालमरुता किं मन्दराद्रिशिखरं कदाचित् चलितम् ? कथम्भूतेन कल्पान्तमरुता ? चलिता अचला यस्मात् स चलिताचलस्तेन चलिताचलेन ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्धूमवर्त्तीति ॥ हे नाथ ! त्वं अपरदीपः ऽसि । कथम्भूतः त्वं दीपः ? निर्धूमवर्त्तिः । धूमश्च वर्त्तिश्च धूमवर्त्ती । निर्गतौ धूमवर्त्ती यस्मात् स निर्धूमवर्त्तिः, धूमकालुष्यं वर्त्तिः - कामदश(शा)-ताभ्यां रहितः इत्यर्थः । पुनः कथम्भूतः त्वं दीपः ? अपवर्ज्जिततैलपूरः । अपवर्ज्जितं तैलपूरं यस्मात् स अपवर्ज्जिततैलपूरः । कथम्भूतः त्वं दीपः ? कृत्स्नं-समस्तं जगत्त्रयं प्रग(क)टीकरोषि ? पुनः कथम्भूतः त्वं दीपः ? जगत्प्रकाशः । जगति प्रकाशो यस्य स जगत्प्रकाशः ॥१६॥

नास्तमिति ॥ हे मुनीन्द्र ! मुनीनां इन्द्रः मुनीन्द्रः, तत्सम्बोधनं क्रियते - हे मुनीन्द्र ! । लोके त्वं सूर्यातिशायिमहिमाऽसि । सूर्यात् अतिशायी महिमा - महात्मि(त्म्यं)यस्य स सूर्यातिशायिमहिमा, तदेव दर्शयति । त्वं कदाचित् अस्तं न उपयासि - न प्राप्नोषि । पुनः त्वं राहुगम्यः न ऽसि । हे स्वामिन् ! पुनः त्वं सहसा-शीघ्रं युगपत्-समकालं जगन्ति - विश्वानि स्पष्टीकरोषि - प्रकटीकरोषीत्यर्थः । पुनः त्वं अम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः न । अम्भोधराणां उदरं अम्भोधरोदरम्, अम्भोधरोदरेण निरुद्धो महाप्रभावो यस्य स अम्भोधरोदर-निरुद्धमहाप्रभावः । मेघमध्यावृतमहातेजा न वर्त्तासो (वर्तसे) ॥१७॥

नित्यो० इति । हे स्वामिन् ! तव मुखाब्जं-मुखकमलं अपूर्वशशाङ्क-बिम्बम् । विभ्राजते-शोभते, मुखं अब्जं मुखाब्जं, अपूर्वं च तत् शशाङ्कबिम्बं मुखाब्जं, किं कुर्वन् ?, जगद्विद्योतयत्-प्रकाशयत् । कथम्भूतं मुखाब्जं ?, नित्योदयं-नित्यं-सर्वदा उदयो यस्य तत् नित्योदयम् । पुन- कथम्भूतं मुखाब्जं ? दलितमोहमहान्धकारं-दलितं-दूरीकृतं मोहमहान्धकारं । अथवा मोहस्य महान्धकारं मोहमहान्धकारं दलितं । पुनः कथम्भूतं मुखाब्जं ? राहुवदनस्य गम्यो न, राहोर्वदनं राहुवदनं-तस्य । पुनः कथम्भूतं मुखाब्जं ? वारिदानां - मेघानां न गम्यम् । पुनः किंविशिष्टं ? अनल्पकान्ति - न अल्पा अनल्पा कान्तिर्यस्य तत् ॥१८॥

किमिति ॥ हे नाथ ! तमस्सु-अन्धकारेषु । युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु सत्सु, शर्वरीषु शशिना किं ? वा-ऽथवा,ऽह्नि-दिवसे विवस्वता-सूर्येण किम् ?। युष्माकं मुखं युष्मन्मुखं, युष्मन्मुखं एव इन्दुः युष्मन्मुखेन्दुः । तेन दलितानि युष्मन्मुखेन्दुदलितानि तेषु । उक्तमर्थं मर्थान्तरन्यासेन द्रढयति - जीवलोके -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्वे निष्पन्नशालिवनशालिनि सति जलधरैः-मेघैः कियत् कार्यं ?। निष्पन्नानि च तानि तानि शालिवनानि च निष्पन्नशालिवनानि तैः शालते-शोभते इत्येवं शीलं निष्पन्नशालिवनशालि तस्मिन् । कथम्भूतैः मेघैः ? जलभारनम्रैः । जलस्य भारेण नम्राः तैः जलभारनम्रैः ॥१९॥

ज्ञानमिति ॥ हे स्वामिन् ! त्वयि यथा ज्ञानं विभाति तथा-एवं हरिहरादिषु नायकेषु न विभाति । कथम्भूतं ज्ञानं ? कृतावकाशं । कृतः अवकाशो येन तत् कृतावकाशस्तम् । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति-स्फुरन् मणिषु तेजः-प्रभा यथा महत्त्वं-गौरवं याति-प्राप्नोति, तु-पुनः एवं काचशकले न याति । स्फुरन्तो ये मणयः स्फुरन्मणयः, तेषु, भास्वद्वैडूर्य-पुष्परागेन्द्रनीलादि-रत्नेषु । काचशकले कथम्भूतेऽपि ? किरणाकुले अपि । किरणैः आकुलं किरणाकुलं तस्मिन् किरणाकुले अपि ॥२०॥

मन्येति ॥ हे स्वामिन् ! हरिहरादय एव दृष्टा-विलोकिता वरं - प्रधानं, अहं एवं मन्ये । येषु सुरेषु दृष्टेषु, हृदयं - चित्तं, त्वयि-भवद्विषये, तोषं-प्रमोदं एति-प्राप्नोतीत्यर्थः । हे नाथ ! भवता वीक्ष्य(क्षि)तेनावलोकितेन किम् ? येन भवता वीक्ष्य(क्षि)तेन भुवि-पृथिव्यां ऽन्यः कश्चिन्मनः भवान्तरेऽपि न हरति ॥२१॥

स्त्रीणामिति ॥ हे स्वामिन् ! स्त्रीणां शतानि शतशः पुत्रान् जनयन्ति । त्वदुपमं सुतं अन्या जननी न प्रसूता । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति-सर्वा दिशः भानि-नक्षत्राणि दधति-धारयन्ति । सहस्त्ररश्मि सूर्यं प्राची एव दिग्-पूर्वा एव दिग् जनयति । सहस्त्र(स्त्रा)रश्मयो यस्य स सहस्त्ररश्मिस्तम् । किम् ? सहस्त्ररश्मि स्फुरदंशुजालं स्फुरत्-देदीप्यमानं अंशूनां-किरणानां जालं यस्य स स्फुरदंशुजालस्तं ॥२२॥

त्वामिति ॥ हे स्वामिन् ! मुनयः-ज्ञानिनः त्वां परमं पुमांसं-पुरुषं आमनन्ति-कथयन्ति । हे स्वामिन् ! तमसः पुरस्तात्-अन्धकारस्याग्रे अर्थात् मध्यान्धकारस्य अमलं-निर्मलं आदित्यवर्णं-सूर्यरूपं आमनन्ति । हे मुनीन्द्र ! योगिनः त्वां एव सम्यक् उपलभ्य-सम्यक्-प्राप्य मृत्युं जयन्ति-कालं निवारयन्ति । हे मुनीन्द्र ! शिवपदस्य मोक्षस्य त्वत्तः-अन्यः शिवः पन्था न - निरुपद्रवो मार्गो न ॥२३॥

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

त्वामव्ययमिति ॥ हे स्वामिन् ! सन्तः-सज्ज्ञानाः त्वां अव्ययं-न विद्यते व्ययो यस्य स अव्ययस्तं अव्ययम्, अवसिनं प्रवदन्ति, कथयन्ति । पुनः त्वां विभुं-समर्थं प्रवदन्ति । पुनः त्वां अचिन्त्यं प्रवदन्ति । पुनः त्वां असंख्यं-संख्यारहितं प्रवदन्ति । पुनः त्वां ब्रह्माणं प्रवदन्ति । पुनः त्वां ईश्वरं-स्वामिनं प्रवदन्ति । पुनः त्वां अनन्तं-न विद्यते अन्तो यस्य स अनन्तस्तं प्रवदन्ति । अनेककंदर्प्पेषु केतुरिव केतुः अनङ्गकेतुस्तम् कंदर्प्पदाहं च । पुनः त्वां योगीश्वरं प्रवदन्ति । पुनः त्वां अनेकं प्रवदन्ति । पुनः त्वां एकं प्रवदन्ति । पुनः त्वां अमलं ज्ञानस्वरूपं प्रवदन्ति । ज्ञानं स्वरूपं यस्य स ज्ञानस्वरूपस्तम् ॥२४॥

बुद्ध इति ॥ हे स्वामिन् ! बुद्धदर्शनिनां देवः त्वं एव असि । कस्मात्? विबुधार्चितबुद्धिबोधात् । विबुधैः-पण्डितैः-देवैर्वा अर्चितः ज्ञानस्य प्रकाशो यस्य स विबुधार्चितबुद्धिबोधः, तस्मात् । शङ्करः त्वमसि । भुवनत्रयशङ्करत्वात्, भुवनत्रये शं-सुखं करोतीति भुवनत्रयशङ्करः तस्य भावः भुवनत्रयशङ्करत्वं, तस्मात् । हे धीर ! धाता त्वमसि । कस्मात् ? शिवमार्गविधेः-मोक्षमार्गस्य विधेः विधानात् करणात् । हे भगवन् ! व्यक्तं-प्रकटं पुरुषोत्तमः त्वं एव असि । पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः ॥२५॥

तुभ्यमिति ॥ हे नाथ ! तुभ्यं नमः । कथम्भूताय तुभ्यं ? त्रिभुवनार्त्तिहराय । त्रीणि च तानि भुवनानि च त्रिभुवनानि, तेषां अर्त्तिं हरतीति त्रिभुवनार्त्तिहरस्तस्मै । पुनः हे नाथ ! तुभ्यं नमः । कथम्भूताय तुभ्यम् ? क्षितितलस्य अमलं च तद् भूषणं च क्षितितलामलभूषणम्, तस्मै क्षितितलामलभूषणाय । पुनः हे नाथ ! तुभ्यं [नमः । कथम्भूताय तुभ्यम् ?]; त्रिजगतः परमेश्वराय । त्रयाणां जगतां समाहारस्त्रिजगत् तस्य त्रिजगतः । परश्चासौ ईश्वरश्च परमेश्वरस्तस्मै परमेश्वराय । पुनः हे जिन ! तुभ्यं नमः । कथम्भूताय तुभ्यं ? भवोदधिशोषणाय । भव एव उदधिः, तं शोषयन्ती- (ती)ति भवोदधिशोषणस्तस्मै । अथवा जनानां भवोदधिः जनभवोदधिस्तं शोषयन्ती(ती)ति जनभवोदधिशोषणस्तस्मै ॥२६॥

को विस्मयेति ॥ हे मुनीश ! मुनीनां - ईशः मुनीशः तत्सम्बोधनं क्रियते-हे मुनीश! । नाम इति प्रसिद्धौ । हे स्वामिन् ! यदि अशेषैः -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्तैर्गुणैः, त्वं निरवकाशतया-नैरन्तर्येण संश्रितः, दोषैः स्वप्नान्तरेपि कदाचित् ऽपि न ईक्षितः-विलोकितः ऽसि, अत्र को विस्मयः?-किमाश्चर्यम् ?। कथम्भूतैः दोषैः ? उपात्तविबुधाश्रयजातगर्वैः । उपात्तः-अङ्गीकृतो यो विबुधानां अन्यदेवानां आश्रयः उपात्तविबुधाश्रयस्तेन जातगर्वो येषां ते उपात्तविबुधाश्रय-जातगर्वास्तैः । अथवा उपात्तो यो विविधाश्रयो नानाप्रकार आश्रय उपात्तविविधाश्रय स्तेन जातः गर्वो येषां ते उपात्तविविधाश्रयजातगर्वास्ते । कोऽर्थः ? यदा हि त्वं सम्पूर्णैर्गुणैः कृत्वा निरन्तरत्वेन आश्रितः तदा दोषाणां रच्यतं वशीरे (तव शरीरे) स्थानाभावात् दोषैर्विचारितं - ''अत्र चेदस्माकं स्थानं नास्ति, तदस्माकं अपरदेवानां शरीरं वर्त्तते'' इति विचार्य दोषा अपरदेवेषु स्थित्वा गर्वं चक्रुरित्यर्थः ॥२७॥

उच्चैरिति ॥ हे स्वामिन् ! उच्चैः अशोकतरुसंश्रितम् । उन्नताशोकवृक्ष समीपाश्रितं भवतो रूपं नितान्तं-अत्यन्तं विभाति । कथम्भूतं रूपं ? उन्मयूखम् । - उद्गतकिरणम् । उत्प्रेक्षते-भवतो रूपं किमिव ? पयोधरपार्श्ववर्त्ति-मेघसमीपस्थितं रवेः-सूर्यस्य बिम्बमिव । कथम्भूतं बिम्बं ? रवेर्बिम्बस्य स्पष्टोल्लसत्किरणं - स्पष्टाः-प्रकटाः, उल्लसन्तः किरणा यस्य तत् । पुनः कथम्भूतं ? अस्ततमोवितानम् । अस्तं तमोवितानं येन तत् अस्ततमोवितानम् ॥२८॥

सिंहेति ॥ हे स्वामिन् ! तव वपुः सिंहासने विभ्राजते-शोभते इत्यर्थः । कथम्भूते सिंहासणि(ने)मणिमयूखशिखाविचित्रे । मणिकिरणसूचीभिः रमणीये । किंविशिष्टं वपुः ? कनकावदातम् । स्वर्णवद् गौरं । इव इति उत्प्रेक्ष्यते, कस्मिन्, कं इव ? तुङ्गोदयाद्रिशिरसि सहस्ररश्मेः । सूर्यस्य बिम्बं इव । तुङ्गं च तत् उदयाद्रेः शिरश्च तुङ्गोदयाद्रिशिरस्तस्मिन् । कथम्भूतं ? सहस्ररश्मेः वियति-आकाशे विलसत्-अंशुलतावितानं यस्य तत् ॥२९॥

कुन्दावदेति ॥ तव वपुः विभ्राजते-शोभते । कथम्भूतं वपुः ? कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं, कुन्दवत् अवदाते - चले चामरे, ताभ्यां चारु प्रधाना शोभा यस्य तत् । कथम्भूतं वपुः ? कलधौतकान्तं । कलधौतवत् कान्तं कलधौतकान्तम् वपुः । कमिव ? सुरगिरेः उच्चैस्तटमिव । कथम्भूतं तटम् ? शातकौम्भं । पुनः कथम्भूतं तटं ? उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधारं । उद्यत् चासौ शशाङ्कश्च उद्यच्छशाङ्कः तद्वत् शुचयो निर्मला वारिधारा यस्य तत् ॥३०॥

छत्रेति ॥ उच्चैःस्थितं तव छत्रत्रयं विभाति-शोभते । कथम्भूतं छत्रं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शशाङ्ककान्तं-शशाङ्कवत् मनोहरमित्यर्थः । पुनः कथम्भूतं छत्रम् ? स्थगित भानुकरप्रतापं, स्थगितः आच्छादितः-भानुकराणां प्रतापो येन तत् । पुनः कथम्भूतं छत्रम् ? मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभम् । मुक्ताफलानां प्रकराः मुक्ताफलप्रकराः तेषां जालेन विवृद्धा शोभा यस्य तत् । उत्प्रेक्षते-छत्रत्रयं किं कुर्वत् इव ? त्रिजगतः परमेश्व[र]त्वं प्रख्यापयत् इव ॥३१॥

उन्निद्रेति ॥ हे जिनेन्द्र ! तव पादौ यत्र भूमौ पदानि गमनस्थानरूपाणि धत्तोधारयतः,विबुधा देवास्तत्र धरापीठे पद्मानि रचयन्ति । किंविशिष्टौ पादौ ? उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्तिः । उन्निद्रानि विकश्वराणि हेम्नः नवानि नूतनानि नवसंख्यकानि वा पङ्कजानि उन्निद्रहेमनवपङ्कजानि तेषां पुञ्ज उन्निद्रहेमनव-पङ्कजपुञ्जस्तस्य कान्तिः उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्तिः तया पर्युल्लसन्ती नखमयूखानां शिखा उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्तिपर्युल्लसन्नखमयूखशिखा तया अभिरामौ ॥३२॥

इत्थमिति ॥ हे जिनेन्द्र ! धर्मोपदेशनविधौ यथा तव विभूतिः इत्थं अभूत् तथा अपरस्य न । अथ उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति - यादृक् दिनकृतः-सूर्यस्य प्रभा भवति तादृक् ग्रहगणस्य कुतः ? कथम्भूता दिनकृतः ? प्रहतान्धकारा, प्रकर्षेण हतं अन्धकारं यया सा प्रहतान्धकारा । ग्रहगणस्य कथम्भूतस्यापि ? विकाशिनः-अपि । विकासो विद्यते यस्य स विकाशी, तस्य विकाशिनः ॥३३॥

श्च्योतन्मदेति ॥ हे स्वामिन् ! भवत्-आश्रितानां-भवत्-सेवकानां, इभं-हस्तिनं आपतन्तं दृष्ट्वा भयं न भवति । कथम्भूतं इभं ? उद्धतम् । उत्कटमित्यर्थः । पुनः कथम्भूतं इभं ? ऐरावताभं ऐरावत इव आभा-कान्तिर्यस्येति ऐरावताभस्तं ऐरावताभं । पुनः कथम्भूतं इभम् ?, श्च्योतन्मदा-विलविलोलक-पोलमूलं, मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् । श्च्योतंश्चासौ मदः श्च्योतन्मदः, तेन आविलं च तत् विलोलकपोलमूलं श्च्योतन्मदाविलविलोलक-पोलमूलं । मत्ताश्च ते भ्रमन्तो भ्रमराश्च श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोल-मूलमत्तभ्रमद्भ्रमराः । तेषां नादेन विवृद्धः कोपो यस्य स श्च्योतन्मदाविल-विलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्-भ्रमरनादविवृद्धकोपस्तम् ॥३४॥

भिन्नेति ॥ हरिणाधिपः - सिंहः, अपि ते-तव क्रमयुगाचलसंश्रितं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाक्रामति । क्रमयोर्युगं-क्रमयुगं तदेव अचलः [तं संश्रितः] क्रमयुगाचलसंश्रितः, तं क्रमयुगाचलसंश्रितम् । कथम्भूतः हरिणाधिपः ? बद्धफालः । कथम्भूतं सेवकं ? क्रमगतं-समीपप्राप्तम् । पुनः कथम्भूतः हरिणाधिपः ? भिन्नेभकुम्भगल-दुज्वलशोणिताक्त-मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः । भिन्नाश्च ते इभकुम्भाश्च भिन्नेभकुम्भास्तेभ्यो गलत् क्षरच्च तत् उज्ज्वलं शोणितं च भिन्नेभकुम्भगलदुज्जूल-शोणितं, तेन अक्तो-मिलितो मुक्ताफलानां प्रकरः भिन्नेभकुम्भगलदुज्वलशोणिताक्त-मुक्ताफलप्रकरस्तेन भूषितो भूमिभागो येन सः ॥३५॥

कल्पान्तेति ॥ हे स्वामिन् ! त्वन्नामकीर्त्तनजलं शेषं समस्तं दावानलं शमयति । तव नाम त्वन्नाम त्वन्नाम्नः कीर्त्तनजलं-त्वन्नामकीर्त्तनजलम् । कथम्भूतं दावानलं ? कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पम् । कल्पान्तकालस्य पवनेन उद्धतश्चासौ वह्निश्च तेन कल्पः कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पस्तम् । पुनः कथम्भूतं दावानलं ? ज्वलितं-देदीप्यमानमित्यर्थः । कथम्भूतं दावानलम् ? उज्ज्वलम्, निर्धूममित्यर्थः । पुनः कथम्भूतं दावानलम् ? उत्स्फुलिङ्गं । उत्-ऊर्ध्वा स्फुलिङ्गा यस्य स उत्स्फुलिङ्गस्तम् । पुनः कथम्भूतं । सन्मुखं आपतन्तं-आगच्छन्तं दावानलम् । किं कर्त्तुमिच्छन्तं इव ? । विश्वं जिघत्सुं इव, अत्तुमिच्छुः जिघत्सुः तं जिघत्सुम् ॥३६॥

रक्तेक्षणमिति ॥ हे जिन ! यस्य पुंसः हृदि त्वन्नामनागदमनी ऽस्ति स पुरुषः निरस्तशङ्कः सन्-निःशङ्कः सन् क्रमयुगेन-चरणयुगेन फणिनं आपतन्तं-आगच्छन्तं आक्रामति-निवारयति । तव नाम - त्वन्नाम त्वन्नामनागदमनी जटिका । कथम्भूतं फणिनं ? उत्फणिनं (उत्फणं) । उत्-ऊर्ध्वं फणो यस्य स उत्फणस्तम् । पुनः कथम्भूतं फणिनम् ? रक्तेक्षणं; रक्ते ईक्षणे यस्य स रक्तेक्षणस्तम् । पुनः कथम्भूतं फणिनम् ? समदकोकिलकण्ठनीलं । समदश्चासौ कोकिलश्च समदकोकिलस्तस्य कण्ठवन्नीलः समदकोकिलकण्ठनीलस्तम् । पुनः कथम्भूतं फणिनं ? क्रोधोद्धतं क्रोधेन उद्धतः उत्कटः क्रोधोद्धतस्तम् ॥३७॥

वल्गेति ॥ हे जिन ! त्वत्कीर्त्तनाद्, बलवतामपि भूपतीनां-राजानां (राज्ञां) बलं-कटकं, आजौ-रणे आशु-शीघ्रं भिदां-भेदं उपैति-प्राप्नोति । कथम्भूतं बलम् ? वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनादं । वल्गत्तुरङ्गाश्च गजानां गर्जितानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितानि तैः भीमो नादो यस्मिन् तत् । धावमानअश्वगजगर्जारव-भीषण-अव्यक्तशब्दे । उत्प्रेक्षते-बलं कमिव ? उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं । तम इव-अन्धकारं इव । उद्यंश्चासौ दिवाकरश्च उद्यद्दिवाकरस्तस्य मयूखाः-किरणास्तेषां शिखाभिः अपविद्धं-स्फुटितं उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं, त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणः युद्धे जयं लभन्ते । तव पादपङ्कजे-त्वत्पादपङ्कजे, ते एव वनं त्वत्पादपङ्कजवनं, तस्य आश्रयः-शरणं येषां ते त्वत्पादपङ्कजवना-श्रयिणः । कथम्भूते युद्धे ? कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-वेगावतारतरणातुर-योधभीमे । कुन्तानां अग्राणि कुन्ताग्राणि तैर्भिन्नाश्च ते गजाश्च कुन्ताग्रभिन्नगजास्तेषां, शोणितो वारिवाहो-रुधिरमेघस्तेन यो वेगावतारो नदीप्रवाहः कुन्ताग्रभिन्नगज-शोणितवारिवाहवेगावतारस्तस्य तरणे-आतुराश्चपलाश्च ते योधाश्च कुन्ताग्रभिन्नगज-शोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुरयोधाः, तैर्भीमं कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगा-वतारतरणातुरयोधभीमे । कथम्भूताः ? त्वत्पाद० ? विजितदुर्जयजेयपक्षाः, विशेषेण जितः दुर्जयो जेयपक्षो यैस्ते विजितदुर्जयजेयपक्षाः ॥३९॥

अम्भोनिधौ इति ॥ हे स्वामिन् ! भवतः स्मरणाद् अम्भोनिधौ रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्राः त्रासं विहाय पारं व्रजन्ति । रङ्गन्तश्च ते तरङ्गास्तेषां शिखरेषु स्थितानि यानपात्राणि येषां ते रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्राः । कथम्भूते अम्भोनिधौ ? क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ, क्षुभिताः-क्षोभं प्राप्ता ये भीषणाः नक्रचक्रपाठीनपीठाः-क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठा यत्र स क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठः । तथा भयदोल्बणः प्रकटो वाडवाग्निर्यत्र स भयदोल्बणवाडवाग्निः, क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्निः तस्मिन् ॥४०॥

उद्भूतेति ॥ हे जिन ! मर्त्या त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहाः । पूर्वं ईदृशा अपि मकरध्वजतुल्यरूपाः कन्दर्पसदृशरूपाः भवन्ति तव पादपङ्कजं त्वत्पादपङ्कजं तस्य रजः त्वत्पादपङ्कजरजः तदेव अमृतं त्वत्पादपङ्कजरजोमृतं तेन दिग्धः-सिक्तः देहो येषां ते त्वत्० । मकरध्वजतुल्यं रूपं येषां ते मकर० । कथम्भूता मर्त्याः ? उद्भूतभीषणजलोदरभारस्तेन भुग्नाः वक्रा उद्भूतभीषण-जलोदरभारभुग्नाः । कथम्भूता मर्त्याः ? शोच्यां दशां उपगताः-प्राप्ताः । पुनः कथम्भूता मर्त्याः ? च्युतजीविताशाः, च्युता गता जीवितस्य आशा येभ्यस्ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्युतजीविताशाः ॥४१॥

आपादकण्ठमिति ॥ हे स्वामिन् ! त्वन्नाममन्त्रं अनिशं-निरन्तरं स्मरन्तः मनुजाः सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति । विगतं बन्धभयं येषां ते विगतबन्धभयाः । कथम्भूता मनुजाः ? आपादकण्ठमुरुशृङ्खलानि तैर्वेष्टितानि अङ्गानि येषां ते उरुशृङ्खलवे० । पुनः कथम्भूताः मनुजाः ? गाढं बृहन्निगड-कोटिनिघृष्टजङ्घाः । गाढं दृढं बृहन्ति च तानि निगडानि च बृहन्निगडानि तेषां कोटिभिरग्रभागे निघृष्टा जङ्घा येषां ते बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः । विशाल अष्ठीलाप्रच्चरितजङ्घाः ॥४२॥

मत्तद्विपेन्द्र इति ॥ हे स्वामिन् ! यः मतिमान्-पण्डितः इमं तावकं स्तवं अधीते, तस्य मनुष्यस्य भिया प्रयाति । कथम्भूतं भयम् ? मत्तद्विपेन्द्र-मृगराजदवानलाहिसङ्ग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थं । मत्तद्विपेन्द्रश्च मृगराजश्च दवानलश्च अहिश्च सङ्ग्रामश्च वारिधिश्च महोदरश्च बन्धनं च मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-सङ्ग्रामवारिधिमहोदरबन्धनानि तेभ्यः उत्थं-प्रकटितं मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-सङ्ग्रामवारिधि-महोदरबन्धनोत्थम् ॥४३॥

स्तोत्रस्रजमिति ॥ हे जिनेन्द्र ! जिनानां सामान्यकेवलिनां इन्द्रः = जिनेन्द्रः तत्सम्बोधनं क्रियते हे जिनेन्द्र ! । यः मनुष्यः इह तव स्तोत्रस्रजं = स्तोत्रमालां कण्ठगतां सतीं अस्रजं(अजस्रं)-निरन्तरं धत्ते । तं मानवं लक्ष्मीः समुपैति-समागच्छति । कथम्भूतं तं ? मानतुङ्गं मानेन तुङ्गं मानतुङ्गम् । कथम्भूता लक्ष्मीः ? अवशा-निश्चला । कथम्भूतां स्तोत्रस्रजं ? गुणैः मया भक्त्या निबद्धां-रचितामित्यर्थः । पुनः कथम्भूतां स्तोत्रस्रजं ? रुचिरवर्णविचित्र-पुष्पां रुचिराश्च ते वर्णाश्च रुचिरवर्णास्ते एव विचित्राणि पुष्पाणि यस्यां सा रुचिरवर्णविचित्रपुष्पा तां रुचिरवर्णविचित्रपुष्पां, मनोहराक्षरकुसुमामित्यर्थः ॥४४॥

इति श्री भक्तामरकाव्यस्य सुखबोधिका वृत्तिः समाप्ताः ॥

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री विवेकचन्द्रगणि कृतम्

भक्तामरस्तोत्र-पादपूर्ति आदिनाथ-स्तोत्रम्

सं. म. विनयसागर

यह कृति तपगच्छनायक श्री विजयदानसूरि के शिष्य उपाध्याय सकलचन्द्रगणि के शिष्य सूरचन्द्र के शिष्य श्री भानुचन्द्रगणि के शिष्य श्री विवेकचन्द्रगणि कृत है। इन्होंने विजयदानसूरि, विजयहीरसूरि और विजयसेनसूरि- इन तीन पीढ़ियों को देखा है और सेवा की है। जगद्गुरु आचार्य हीरविजयसूरिजी का अकबर पर अप्रतिम प्रभाव था और वह प्रभाव निरन्तर चलता रहे, इस दृष्टि से उन्होंने शान्तिचन्द्रगणि, भानुचन्द्रगणि इत्यादि को अकबर के पास रखा। स्वयं गुजरात की ओर विहार कर गये। भानुचन्द्रगणि का भी सम्राट पर बड़ा प्रभाव रहा। आचार्यश्री ने लाहोर में वासक्षेप भेजकर उनको उपाध्याय पद दिया था और अन्त में ये महोपाध्याय पदधारियों की गणना में आते थे। भानुचन्द्र के मुख से सम्राट अकबर प्रत्येक रविवार को सूर्यसहस्रनाम का श्रवण करता था। आइने-अकबरी में भी भानुचन्द्र का उल्लेख प्राप्त होता है। अकबर के मरण समय तक भानुचन्द्र उनके दरबार में रहे अर्थात् संवत् १६३९ से १६६० का समय अकबर के सम्पर्क का रहा।

भानुचन्द्रगणि व्युत्पन्न विद्वान् थे। भानुचन्द्रगणि का विशेष परिचय देखना हो तो उनके शिष्य सिद्धिचन्द्र कृत 'भानुचन्द्र चरित्र' अवलोकनीय है। महोपाध्याय भानुचन्द्र के अनेकों शिष्य थे जिनमें सिद्धिचन्द्र और विवेकचन्द्र प्रसिद्ध थे। विवेकचन्द्र भी प्रतिभाशाली विद्वान् थे किन्तु इस कृति के अतिरिक्त उनकी अन्य कोई कृति प्राप्त नहीं है। अतएव इनके जीवन कलाप का वर्णन करना सम्भव नहीं है।

स्वतन्त्र काव्यरचना से भी अधिक कठिन कार्य है पादपूर्ति रूप में रचना करना। पादपूर्ति में पूर्व कवि वर्णित श्लोकांश को लेकर किसी अन्य विषय पर रचना करते हुए उस पूर्व कवि के भावों को सुरक्षित रखना वस्तुतः कठिन कार्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्तामर स्तोत्र श्री मानतुङ्गसूरिजी रचित है । भक्तामर और कल्याण मन्दिर ये ऐसे विश्व प्रसिद्ध स्तोत्र हैं जो कि आज भी श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों में मान्य है । श्वेताम्बर परम्परा ४४ पद्यों का स्तोत्र मानती है जबकि दिगम्बर परम्परा ४८ पद्यों का ।

पादपूर्ति दो प्रकार से होती है । एक तो सम्पूर्ण पद्यों के प्रत्येक चरण का आधार मानते हुए रचना करना और दूसरा पद्य के अन्तिम चरण को ग्रहण कर और भाव को सुरक्षित रखते हुए रचना करना । इस स्तोत्र के अनुकरण पर अनेक दिग्गज कवियों ने प्रचुर परिमाण में पादपूर्ति स्तोत्र और छाया स्तवन भी लिखें हैं जो निम्न हैं :-

१. नेमि भक्तामर स्तोत्र - भावप्रभसूरि
२. ऋषभ भक्तामर स्तोत्र - समयसुन्दरोपाध्याय
३. शान्ति भक्तामर स्तोत्र - लक्ष्मीविमल
४. पार्श्व भक्तामर स्तोत्र - विनयलाभ
५. वीर भक्तामर स्तोत्र - धर्मवर्धनोपाध्याय
६. सरस्वती भक्तामर स्तोत्र - धर्मसिंहसूरि
७. भक्तामर प्राणप्रिय काव्य - रत्नसिंह
८. भक्तामर पाद पूर्ति - पं. हीरालाल
९. भक्तामर पादपूर्ति स्तोत्र - महा० म० पं० गिरधर शर्मा
(इसके प्रत्येक चरण की पादपूर्ति की गई है)
१०. भक्तामर स्तोत्र छाया स्तवन - मल्लिषेण
११. भक्तामर स्तोत्र छाया स्तवन - रत्नमुनि

इस कृति के कर्त्ता विवेकचन्द्र ने श्री मानतुङ्गसूरिजी के भावों को सुरक्षित रखते हुए और उसको प्रगति देते हुए यह पादपूर्ति की है । इस पादपूर्ति स्तोत्र को देखते हुए कहा जा सकता है कि ये संस्कृत साहित्य के धुरन्धर विद्वान् थे और समस्यापूर्ति में भी भाग लेते थे । यह कृति रमणीय और पठनीय होने से यहाँ प्रकट की जा रही है । इसकी एकमात्र प्रति ही प्राप्त है, वह किसी भण्डार में है, इसका ध्यान नहीं । अतएव इस सम्बन्ध में क्षमा चाहता हूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्तामरस्तोत्र-पादपूर्ति आदिनाथ-स्तोत्रम् ।

नम्रेन्द्रचन्द्र ! कृतभद्र ! जिनेन्द्र ! चन्द्र ! ज्ञानात्मदर्शपरिदृष्टविशिष्टविश्व ।
त्वन्मूर्त्तिरर्त्तिहरणी तरणी मनोज्ञे वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥
गृह्णाति यज्जगति गारुडिको हि रत्नं, तन्मन्त्र-तन्त्रमहिमैव बुधो न शक्तः ।
स्तोतुं हि यं यदबुधस्तदसीय शक्तिः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥
त्वां संस्मरंतहमरंकरभीप्सितस्य, दूरं चिरं परिहरामि हरादिदेवान् ।
हित्वा मणिं करगतामुपलं हि विज्ञ-मन्य क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥
ध्यानानुकूलपवनं गुणराशिपात्रं, त्वामद्भुतं भुवि विना जिन ! यानपात्रम् ।
मिथ्यात्वमत्स्यभवनं भवरूपमेनं, को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥
क्षुत्क्षाम-कुक्षि-तृषिता-तप-शीत-वात-दुःखीकृताद्भुततनोर्मरुदेविमाता ।
अद्याप्युवाच भरतादिभवाङ्गनस्य, नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥
मुक्तिप्रदा भवति देव ! तवैव भक्तिर्नान्यस्य देवनिकरस्य कदाचनापि ।
युक्तं यतः सुरभिरेव न रौद्रमारास्तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः ॥६॥
गाङ्गेयगात्रनृतमस्तृणसत्त्रदात्रं त्वन्नाममात्र वसतो ? गुणरत्नपात्रम् ।
मिथ्यात्व याति विलयं मम हृद्विलीनं, सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥
नेत्रामृते भवति भाग्यबलेन दृष्टे, हर्षप्रकर्षवशतस्तव भक्तिभाजाम् ।
वक्षःस्थलस्थित उतेक्षणतश्च्युतोसौ मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८॥
श्रीनाभिनन्दन ! तवाननलोकनेन, नित्यं भवन्ति नयनानि विकस्वराणि ।
भव्यात्मनामिव दिवाकरदर्शनेन, पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ॥९॥
त्वत्पादपद्मशरणानुगतान्नरांस्त्वं, संसारसिन्धुपतिपारगतान् करोषि ।
निःपाप ! पारगत ! यच्च स एव धन्यो, भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥
युक्तं त्वदुक्तवचनानि निशम्य सम्यक्, नो रोचते किमपि देव ! कुदेववाक्यम् ।
पीयूषपानमसमानमहो विधाय, क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥
शम्भुः स्वकीयललनाललिताङ्गभागो, विष्णुर्गदासहितपाणिरितीव देव ! ।
प्रद्वेषरागरहितोऽसि जिन ! त्वमेव, यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥
तेजस्विनं जिन ! सदेह भवन्तमेव, मन्येस्तमेति सवितापि दिवावसानम् ।
दीपोऽपि वर्त्तिविरहे विधुमण्डलं च, यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥
ये व्याप्नुवन्ति जगदीश्वर ! विश्व ! विश्वमत्राङ्गनानपि सृजन्तितरां विलोक्यम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वां भास्करं जिन ! विना तमसः समूहान् कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥
सिंहासनं विमलहेममये विरेजे, मध्यस्थित-त्रिजदीशश्वरमूर्तिरम्यम् ।
नोद्योतनार्थमुपरिस्थितसूर्यबिम्बं, किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥
दोषाकरो न सकरो न कलङ्कयुक्तो, नास्तं गतो न सतमानसविग्रहो न(?) ।
स्वामिन्विधुर्जगति नाभिनरेन्द्रवंश-दीपोपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥
नित्योदयस्त्रिजगतीस्थतमोपहारी, भव्यात्मनां वदनकैरवबोधकारी ।
मिथ्यात्वमेघपटलैर्न[स] मावृतो यत्सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥
लावण्य-पुण्य-सुवरेण्य-सुधानिधानं, प्रह्लादकं जनविलोचनकैरवाणाम् ।
वक्त्रं विभो तव विभाति विभातिरेकं विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥१८॥
ध्यातस्त्वमेव यदि देव ! मनोभिलाष-पूर्णीकरः किमपरैर्विविधैरुपायैः ।
निःपद्यते यदि च भौमजलेन धान्यं, कार्य्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥१९॥
माहात्म्यमस्ति यदनन्तगुणाभिरामं, सर्व्वज्ञ ! ते हरिहरादिषु तल्लवो न ।
चिन्तामणौ हि भवतीह यथा प्रभावो, नैव तु काचकशले किरणाकुलेपि ॥२०॥
तद्देव ! देहि मम दर्शनमात्मनस्त्वमत्यद्भुतं नृनयनामृतमत्र दृष्टे ।
स्वामिन्निहापि परमेश्वर ! मेऽन्यदेव ! कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेपि ॥२१॥
ज्ञानस्य शिष्टतरदृष्टसमस्त लोका-लोकस्य शीघ्र हतसंतमसस्य शश्वत् ।
दाता त्वमेव भुवि देव ! हि-तं (?) प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥
सिंहासनस्थभवदुक्तचतुर्विधात्म-धर्मादृते त्रिजगदीश ! युगादिदेव ! ।
सद्दानशीलतपनिर्मलभावनाख्यान् नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥२३॥
स्वामिन्ननन्तगुणयुक्त कषायमुक्त साक्षात्कृतत्रिजगदेव ! भवत्सदृक्षाः ।
नान्ये विभङ्गमतयो रुचिरं च पञ्च ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥
चिन्तामणिर्मणिषु धेनुषु कामधेनु-र्गङ्गा नदीषु नलिनेषु च पुण्डरीकम् ।
कल्पद्रुमस्तरुषु देव यथा तथात्र व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥
भास्वद्गुणाय करणाय मुदो रणाय, विद्याचणाय कमलप्रतिमेक्षणाय ।
पुंसां छलेन पतितं पुरतो हि रत्र दृष्येत किं नियतमंतर तत्त्वदृष्ट्या ।
मोहावृतेन मयका त्वयि संस्थितेग्रे, स्वप्नान्तरेपि न कदाचिदपीक्षितोषि ॥२७॥(?)
मन्मानसांतरगतं भवदीय नाम पापं प्रणाशयति पारगत ! प्रभूतम् ।
श्रीमद्युगादिजिनराज हिमं समन्ताद्, बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्त्ति ॥२८॥
जन्माभिषेकसमये गिरिराजशृङ्गे, प्रस्थापितं तव वपुर्विधिना सुरेन्द्रैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रोद्योतते प्रबलकान्तियुतं च बिम्बं, तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्ररश्मेः ॥२९॥
केशच्छटां स्फुटतरां दधदंशदेशे, श्रीतीर्थराज ! विबुधावलिसंश्रितस्त्वम् ।
मूर्धस्थकृष्णलतिकासहितं च शृङ्ग-मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥
स श्रीयुगादिजिन ! मेभिमतं प्रदेहि धर्मोपदेशसमये दिवि गच्छदूर्ध्वम् ।
ज्योतिर्दतां(?) जयति यस्य शिवस्य मार्गं, प्रस्थापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥
सोपानपंक्तिमरजांसि भवद्वचांसि, स्वर्गाधिरोहणकृते यदि नो कथं तत् ।
तत्राश्रिता त्रिजगदीश्वर ! यान्ति जीवा, पद्मानि तत्र विबुधा परिकल्पयन्ति ॥३२॥
भाति त्वया भुवि यथा न तथा विना त्वां, श्रीसंघनायकगुणैः सहितोपि संघः ।
शोभा हि यादृगमृतद्युतिना विना तं, तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥३३॥
त्वत्स्कन्धसंस्थचिकुरावलिकृष्णवह्नि वक्त्रस्फुरद्विषनिजाक्षिविनिर्यदग्निः ।
सर्पोपि न प्रभवति प्रबलप्रकोपे, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३४॥
संप्राप्तसंयमदरीवसनं प्रलब्धं, पुण्यौषधं परमशर्म्मफलोपपेतम् ।
मर्त्यं महोदयपते भववैरिवृन्दं, नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३५॥
धर्मे धनानि विविधानि न नादहन्तं, मानुष्यमानसवने नियतं वसन्तम् ।
दीप्यत्तरं स्मरसमीरसखं वृषाङ्कः त्वन्नामकीर्त्तनजलं समयत्यशेषम् ॥३६॥
यत्रोद्गता शितिलताहिगिरेर्गुहायां, किं तन्न तिष्ठति फणी गुणगेह ! तस्मात् ।
मिथ्यात्वमेतदगमन्नितरामुवष्ट । त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥३७॥
पीडां करोति न कदापि सतां जनानां, सूर्योदयादमृतसूः सरसीरुहाणाम् ।
दुःखीकृतं त्रिभुवनो विपदां च यस्य, त्वकीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥३८॥
त्वद्वाणिमञ्जुलमरन्दरसं पिबन्तस्तापोप्सिता परमनिर्वृतिमादिदेव ! ।
पुण्याढ्य पञ्च जनचञ्चुरचञ्चरीक-स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥३९॥
कन्दर्पदेवरिपुसैन्यमपि प्रजीत्य त्वल्लोहकारकृतमार्गसुवर्म्मिताङ्गाः ।
देव ! प्रभो ! जय जयारवभङ्गभीरास्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४०॥
त्वत्पादपद्मनखदीधितिकुंकुमेन चित्रीकृतः प्रणमतां स्वललाटपट्टः ।
येषां त एव सुतरां शिवसौख्यभाजो, मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४१॥
भग्नेव कर्मनिगडं जिन लोहरकारवाङ्मुद्गरेण भवगुप्तिगृहासवासाः ।
कर्मावलीनिगडिता अपि भक्तसत्त्वा, सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४२॥
रोषो दिवेति सहगामपहाय माम-सौ सम्पदाभिरमते सह मत्सपत्न्या ।
द्राक्चक्रवालमगमद्विदेव(?) तस्य यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्याङ्गणे सुरतरुस्सुरधेनुरंह्री(?), चिन्तामणिः करतलं निजमन्दिरञ्च ।
यः श्रीयुगादिजिनदेवमलं स्तवीति, तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४४॥
श्रीमन्मुनीन्द्रवरवाचक-**भानुचन्द्र** ! पादाब्जसेवक-**विवेकनिशाकरेण** ।
भक्तामरस्तवनतुर्यपदैः समस्याकाव्यैः स्तुतः प्रथमतीर्थपतिर्गृहीत्वा ॥४५॥[१]

॥ इति भक्तामर-समस्या-स्तवन श्रीमदादीश्वरो वर्णितः ॥

C/o. प्राकृत भारती
13-A मेन मालवीय नगर,
जयपुर ३०२०१७

१. अशुद्धप्रायः यह सम्पादन है । मूल प्रति हमारे सामने नहीं है । अतः जितना हो सका उतना सुधार दिया । बाकी सम्पादनकर्ताने भेजा वैसा ही पाठ प्रकाशित हो रहा है । पद्य २६ का उत्तरार्ध नहीं है ।

-शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवनभूषण-भूषणभवन काव्य

- सं. उपा. भुवनचन्द्र

अमारा संग्रहमांनी एक अपूर्ण प्रतिमांथी मळेलुं आ चमत्कृतिसभर काव्य अपूर्ण छे- त्रुटित छे. ११ पत्रनी प्रतना प्रारम्भना पांच पत्र नथी. रचना अष्टक प्रकारनी छे पण आठ-आठ श्लोकोनुं बन्धन कविए स्वीकार्युं नथी. चोथा अष्टकनो अन्तिम श्लोक मळे छे जे नवमो छे. अष्टक ५, ६, ७मां नव-नव श्लोक छे. आठमा अष्टकमां आठ श्लोक पूरा थया पछी फरी एकथी नव श्लोक आप्या छे, ते पछी आठमुं अष्टक पूरुं थाय छे. त्यार बाद बे श्लोक छे जेमां कविनी गर्वोक्ति छे.

प्रत शुद्ध करेली छे. अक्षरो मरोडदार अने विशाल छे. लाल अने काळी - एम बे शाहीनो उपयोग थयो छे. ज्यां ज्यां लहियानी भूल थई छे तेवा स्थाने संमार्जन थयेलुं छे. पदच्छेद, संशोधन तथा टिप्पण सूचववा माटे सम्पूर्ण प्रतमां लिपिचिह्नो छूटथी वपरायां छे. प्राचीन लेखनपद्धतिमां लिपि चिह्नोनो प्रयोग कई रीते थतो हतो ते समजवा आ प्रति एक नमूनानुं काम आपे एवी छे.

कोईक विद्वान मुनि अथवा पण्डिते काव्यना कठिन शब्दो, कूटस्थानो वगेरेनुं स्पष्टीकरण करतां टिप्पणो लख्यां छे. शाही उखड़ी जवाथी क्यांक क्यांक शब्दो पूरा वंचाता नथी अथवा अस्पष्ट वंचाय छे. प्रति सोळमा शतकनी जणाय छे.

कृतिना रचयिता **वाचक साधुहर्ष** छे. अन्तिम श्लोकमां कर्ता कहे छे के **विद्वान लक्ष्मण**ना अनुरोधथी, **सुमतिलाभ** माटे **साधुहर्षे** आ रचना करी, कर्ताना गुरु, गच्छ के समयनो निर्देश प्रतमां के कृतिमां नथी. कर्ता तथा कृतिना रचनाकाल विशे विशेष तपास थई शकी नथी.

कृतिना अन्ते 'भुवनवर्णने भवनभूषणे भूषणभवने' एवो उल्लेख छे तेथी 'भवनवर्णन' एवुं नाम मानी शकाय परंतु प्रत्येक अष्टकना अन्ते 'भवनभूषणे भूषणभवने' ए ज लखेलुं छे, तेथी ए नाम वधु योग्य लागे छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्यनो विषय श्री नेमिकुमारना लग्ननो प्रसंग छे. मुख्यत्वे नेमिकुमार तथा नेमिकुमारनो महेल- ए बन्नेनुं वर्णन एक साथे थाय तेवी द्व्यर्थक रचना छे परन्तु राजीमती, द्वारिका, रैवताचल आदिनुं वर्णन पण आमां सामेल छे.

चित्रकाव्य होवाथी एकाक्षर, द्व्यक्षर, छत्रबन्धादि बंध, श्लेष, यमक, वगेरे आ काव्यमां प्रचुर रीते प्रयोजाया छे. अनेकार्थक श्लोको, प्रहेलिका अने शब्दचातुरी पण एटला ज प्रमाणमां जोवा मळे छे. शब्दचातुरीनो एक नमूनो - (अ. ४, श्लोक ९)

''रम्यवदना राजीमती, तारा वरनुं नाम बहु सुंदर छे, ते मने कहे ने !'' - सखी.

''शैवेय'' - राजीमती.

''एटले शिवानो पुत्र ने ? तो शुं ए गणपति छे के पछी शियाळ छे ?'' - सखी. (शिवा = दुर्गा, तथा शिवा = शियाळी)

''नहि, नहि, आयुष्मती, ए तो माधवना बन्धु छे'' - राजीमती.

''कृष्णना बन्धु एटले हलधर बलराम ज ने ?''

''ना, ना, नेमि'' - राजीमती

''तो शुं चन्द्र छे ?'' - सखी.

- राजीमतीनी सखीओनी वरसम्बन्धी आवी शब्दलीलावाळी वाणी शोभी रही छे.''

अहीं श्लोकमां चन्द्र माटे कवि 'चमाः' शब्द वापरे छे. टिप्पणमां आनो अर्थ 'हिमकर' अर्थात् चन्द्र दर्शाव्यो छे. आ शब्द कोशमां जडतो नथी. आवुं केटलुंक कविसम्प्रदायथी ज जाणी शकाय. कूटकाव्य/चित्रकाव्य होवाथी रचना यद्यपि क्लिष्ट छे तो पण बुद्धिने चमत्कृत करनारी होवाथी रसप्रद बने छे. कविनी विद्वत्ता, कल्पनाशक्ति, शब्दसमृद्धि, रचनाचातुरी काव्यमां झळहळी रहे छे. अन्तिम श्लोकमां कवि स्वयं कहे छे :-

''(आ काव्य वांचीने) ईर्ष्याळुनुं मुख वक्र थशे अने मन्दमतिवाळानी काया संकोच पामशे.'' अर्थात् शरम अनुभवशे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजसभाओमां पाण्डित्यप्रदर्शनना युगमां आवी रचनाओ करवानी कविओने प्रेरणा मळती. प्रस्तुत रचना पण आवी कोई स्पर्धा साथे जोडायेली होय अथवा पोताना शिष्य आदिना विनोद अर्थे पण कदाच रचाई होय.

काव्य अने तेना कर्ता विशे वधु विगतो कोई विद्वज्जन रजू करशे तो आनन्द थशे.

★ ★ ★

'रम्यं ते वरनाम वामवदने राजीमति ! ब्रूहि मे ?'
'शैवेयः' 'किमु पर्शुपाणिरथ किं गोमायुरायुष्मति ! ?'
'नो, श्रीमाधवबान्धवः' 'किमु हली ?' 'नो नेमिराले' 'चमा?'[१]
इत्थं राजि[२]मतीवरसखीवररतिं[३]श्रीभारती राजते ॥९॥*

इति श्रीभवनभूषणे भूषणभवने चतुर्थाष्टकम् ।

[५]

न खगतिश्च कवर्गगतिस्तव
करगतिर्नरनायकसङ्गतेः ।
सुजलशङ्ख इयाय महागतिं
स्तुतिविधायक एष्यति तद् घनाम् ॥१॥ द्रु०

श्रीमन्तौ मुनिचारुशब्दनिकरं सम्यग् ब्रुवन्तौ स्थिरा
अङ्गस्त्री महती महावसुमती साराङ्गराजीमती ।
श्रीमत्सौर्यपुरे महोत्सवजनी श्रीद्वारकावासिनौ
राजेते वरपुष्पगन्धमहिता आवाँसनेमी उभौ ॥२॥ शार्दू०

१. हिमकरः । २. राजी तथा राजिरिति रूपद्वयेन न दोषः । राजिमतीपतिदग्धरतीशतद्गुरुतां..... इति श्रवणाच्च तथात्र ह्रस्वेन तनुह्रस्वताकरणं ज्ञेयमिति व्यङ्ग्यम् । ३. भर्तृक्रीडा तस्या श्रीभारती । ४. अजाद्यन्तत्वात् पूर्वनिपातः । * इत्थं राजिमतीसखीवररति० आम पाठ होय तो छन्दोभङ्ग थतो अटकी शके.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजच्छङ्खो[५] महेशो मलयजमहितो रम्यभूमध्यवासो
जैनो नानाप्रबन्धः शयसितकमलः[६] कामिनीगीतगीतः ।
रम्योद्वाहे सुवाहे ध्वजगजनिवहे पद्गरथ्याधिपत्ये
सच्छ्रीसर्वेक्ष्यमौलिर्विमलचमरयुक् छत्रितोऽयं विभाति ॥३॥ स्रग्धरा०

नेमेः पर्यस्तिकायाः किमुत वरहरेः पाणिसंस्थः सुकम्बू
रूप्यौघो मौक्तिकाप्तः किमुत सुजलधेः[७] फेनपिण्डोऽप्यखण्डः ।
किंवा कर्पूरपूरातिसुरभिमलयप्रोद्भवप्रासशामा
वामोरुस्थूलमूलोद्धतकुचकलसो[८] वा सतां सूपदेशः[९] ॥४॥ स्रग्धरा०

ऐन्द्रो हस्तीह वोच्चैः किमुत हिमनगोनग्रलब्धौ[१०]रंकीर्तेः
पुञ्जो[११] दातुर्गिरीशप्रकटवृषभको मूर्तिमज्जैनधर्मः ।
स्थाणुः स्थाणोर्विभूतिप्रचुरभगिरिजोरोज इन्द्रस्सुहांसो (?)
हासो वा श्रैधरास्यः किमुत विमलभावासरसां राशिवासः ॥५॥ स्रग्धरा०

ऊहे तं (?) पक्षिराजः किमुत शशिहयो-य इन्द्रस्य सम्यङ्
मन्ये गाने मुनी द्वौ किल निजशिरसी घर्षयन्ताविति द्वौ ।
नायं नायं न चायं ह्ययमय मयकं नायमेषो यमेष
नायं नायं न चासावयमयमयकं श्रीवरावास एव ॥६॥

श्रग्धराछन्दांसि । त्रिभिर्विशेषकम् ।

सा-र्थं नै(नौ?)म्यहं नेमिं सार्थं नत्वा सदा नमिम् ।
श्रीशादारं(?) नरैभावं श्रीमत्सदर्थभानवम् ॥७॥

श्लोकः । छत्रबन्धचित्रम् ।

नेतारं वा तारं गाने नेमिं भा आदानं मेने ।
श्रीआवासं शोभासारं श्रीदातारं देवैः सारम् ॥८॥

विद्युन्माला । द्वितीयछत्रबन्धचित्रम् ।

---

५. पाञ्चजन्यः, मङ्गलार्थं ध्वनिः । ६. शये हस्ते सिता उज्ज्वला कमला लक्ष्मीर्यस्य स शय०; शये शयने सितानि कमलानि यत्र स शय० । ७. क्षीरसमुद्रस्य । ८. कुचकलसेतिकरणात्पुनरु-रोनेतिकरणे न दोषः । वा पुनः करणं देवमनुष्यवशाविशेषख्यापनार्थमिति । ९. सुकथनं १०. गति । ११. तथात्रौघवृन्दपुञ्जराशि इत्येतयोरेकार्थत्वात् पूर्वपदभिन्नत्वात् अत्रादोषता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवा देया यादेवासे नेमे देवं वन्देऽमेने ।
त्वामस्त्रि नानास्त्रि मत्वा सारांगातोतो गारांसाम् ॥९॥ विद्युन्माला ।

आज्ञाज्ञातश्च दारासो मण्डने ज्ञोस्य मूलतः ।
आज्ञाज्ञातश्च दारासो मण्डनेऽज्ञोस्य मूलतः ॥१०॥ अनुष्टुप् ।

इति श्री भवनभूषणे भूषणभवने पञ्चमाष्टकम् ।

६ । अथ पूर्वर्णनम् ।

पूरत्तादृत एव वेत्ति न परश्चार्यागतिं सुन्दराम्
मात्रामत्रमनन्तसिद्धिफलदं दूराय नांह्रीयुतम् ।
चार्यागत्युचितादशेषरहिता निश्शेषमौलिस्थितात्
पात्रापात्रविशेषचेतिति परापूर्वप्रणीतात्स्फुटम् ॥२॥ शा० ॥

पूःपूर्वेव परा परापदहतिप्राणिव्रजे सद्दया
सूर्याद्या सुरमण्डलीस्वरुचिराचार्षिका कर्षिका ।
नित्योदारविभाजनाहतभया भव्यावलीमण्डिता
भातीह प्रबला बला बलवती श्रीनाथनेमीशतः ॥३॥ शा० ॥

श्रीतोया दवदग्धिकासुगुणगुः प्राकारसीमाभया
नानानारदवर्त्तिकाऽर्जुनकथा वा कोपलक्ष्याक्षया ।
तापी पाति परीक्षिता हयगजा श्री औजयंती ह्यतः
सूर्याधा नगरी विभाति सततं श्रीद्वारकेव स्फुटम् ॥४॥ शा० ॥

प्रसरशिशिरभावा माधवश्रीस्वभावा
स्वपतिमिलनतापा द्रव्यवर्षाप्रतापा ।
सुहृदुदयसरिद्भा जन्मवेलैकसद्भा
सघनभवनधन्या भाति पूराजकन्या ॥५॥ मालिनी ॥

उच्चाधोगुणनां कुतूब(ह?)लसरत्प्राणेह सोस्नेहदां
भूयो लोकविवासरो लघुसृतिप्रक्षीणराजत्कटीम् ।
नाभीकूपसुरोमवल्लिपलिदां तत्स्तूपनृत्यत्कुचां
रम्यास्यामयमाप पापरहितां नारीमिवैव क्षमाम् ॥६॥ शा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दध्युज्ज्वलाभेन यका तवाङ्केऽदे-स्ति नो इष्टगृहे ग्रहे च ।
यद्भूतिमद्गर्ज्जघ्रणेस्थित-किं सा शुनो नो रथयायिनश्के ॥७॥ इन्द्रवज्रा ।

अव्यक्तशब्दव्रजपूर्वकेतिः सन्नीतिमार्गप्रवणः पुराणः ।
सर्वप्रियप्रेतिविनाशहेतु-र्मेघो यथा मेघद एष भाति ॥८॥ इन्द्रवज्रा ।

लात्वे मां पृतनां विमुच्य परमां रामां च कामागमा
गर्जद्गर्जहयोदयध्वजरथा सत्पद्गतुर्यव्रजाम् ।
प्रीतां भावभृतां सतीं दुरितराट्संपीडनात्खण्डितां
प्रापावासविभुर्दयां वसुमतीराजीमतीतापदाम् ॥९॥ शार्दू० ।

इति श्रीभवनभूषणे भूषणभवने षष्ठाष्टकम् ।

पूरामा त्वयका विना च सहसा त्यक्तास्यहास्यानघ
स्वाभां स्वापदवीक्षणाद् हिमयुतां श्रीहीरिकां मुञ्चता ।
उच्चैः स्थापितबाहुकोमलकरां साराङ्गराजीमतीं
श्यामां चारुदतीं सतीं वरमहे हूहूपुरासुन्दरे ॥१॥ शा० ।

आचाररीतिं स्वकुलस्य चक्रे
वैवाहप्रज्ञप्तिनिवेदकायः[१२] ।
श्रीसूत्रकृत्सद्वचसा मुदेऽस्य-
स्थानादरौघं[१३] वरदानविधानसत्कः ॥२॥ इन्द्र० ।

ज्ञाताप्रवृत्तेरथ चोग्रसेन
उपासकस्याशुदशार्हकस्य ।
पूर्वैरिदे**हान्तकरः** स्थिराङ्गः
सानुत्तरः प्रश्नविपाकदर्शी ॥३॥ युग्मम् ॥ इन्द्र० ।★

भवति भवत ईतेर्नाश आशून्नतेश्च
बलपरभवसिंहे वह्निरात्रौं[१४]स्वरूपः ।
भवनभवननाथ प्रोल्लसल्लोकगाथः
विशद-दशवामिर्मा भवावो नवामः(?) ॥४॥

---

१२. विसर्गो चित्रभङ्गाय न । १३. समवायः ।

★ २-३ पद्योमां ११ अङ्ग-आगमोनां नामो वणी लेवायां छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अखिलभुवननामन् वर्णनीयौ-धामन् (?)
त्रिदशपतिनतांह्रे मुक्तिजाने सुवर्ह ।
मतिधृतिगुणपूर्णस्फारतौसद्वयाणः
जगति महति लोकैः श्लोकगाथाभिरीक्ष्यः ॥५॥

सयमममनतौ ते त्वन्तरङ्गी श्वदेव
दलितदुरिततापो वायुवाङ्गोऽङ्गचित्तम् ।
निजधृतिजितवायू* तोयमारात्यहंजित्
भवजलतरनावा श्रेयसामावकायम् ॥६॥

मालिनीछन्दांसि । त्रिभिर्विशेपकम् ।

श्री ञ्ञ रूपा ३ अ-ावो[१५] इउऋतृ(लृ)[१६]उदितिर्मे नतिः प्राणिनाथ
मां सत्संयोगयोगां जगदसुमदनोऽमन्मनाः श्रीजनासः ।
हे ए ऐं ऊ च ऊ रेहि तितउसदृशं संप्रबोध्याशु वध्वा
गन्त्री गन्त्रीव भूत्वा स्यवसनमदने नानये चेदनायम् + ॥७॥ स्रग्धरा

सेवकः शेखरः सादरं सागरः शङ्करः पावनं भूघनो भूतलम् ।
आदिवर्णैर्विनेमानि वस्तूनि मे त्वां विना दौर्जलो भस्मनि प्राणिनि ॥८॥
स्रग्विणी

गोपतेर्दौर्जनं[१७] श्चायसो हाडिकं सन्ति सन् सद्हृदः साम्प्रतं मत्प्रिय ! ।
मां विना ते समानीह तानि प्रभो ! तत्प्रभोस्तैः प्रशस्यास्य हास्यानघः ॥९॥
स्रग्विणी

इति भवनभूपण-भूषणभवने ससमाष्टकम् ।

---

१४. आं त्रीति आत्रः, आत्रश्चासावों च आत्रौं, आत्रौंस्वरूपः – लक्ष्मीपप्रणवसहज इत्यर्थः । १५. उ खेदे । १६. इ उ ऋ तृ (लृ) इति ह्रस्वाक्षरप्रमाणा उदितिरूर्ध्वगतिर्यस्य स इउऋतृ(लृ) उदितिर्वा इउऋतृ(लृ) वर्णैः उदितिरूर्ध्वगतिर्यस्य स मध्यमपदलोपी समासः । ★ चित्तविशेपणं । + नय एव नायो नयमार्गः स्वार्थे, ततो नास्ति नायो यस्य सोऽनायोऽनयी इत्यर्थः, तं तथा, वा नास्ति आयो लाभो यस्य [सोऽनाय] स्तं तथा । १७. कीदृशं वनं दौर्ज्जनं दुर्जनानामिदं दौर्जनं वा दुर्जनाः सन्ति अत्र दौर्ज्जनं । अस्त्यर्थेऽण् । कीदृशं दरं भयं गर्त्तो वा 'गर्ते दरस्त्रिपु भयो दरोऽस्त्रिया'मिति **यतीन्द्रः** । दुर्जनानामिदं दौर्ज्जनं दरं, चकारादस्याप्येतदेव विशेषणं ज्ञेयम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८

पट्टनपत्तनसारनिवासः सेवकसेवकनुत्यावासः ।
मोदक मोदक शोभनिवासो यच्छति यच्छति सं घनिवासः[१८] ॥१॥
तोटकम्

वरभविमलनाथं दूरतस्त्वाविशेषं[१९]
लघुतरकरणाद्वा पण्डिताः खण्डितास्ते ।
वरभविमलनाथं दूरतस्त्वाविशेषं
लघुतरकरणाद्वा पण्डिताः खण्डितास्ते ॥२॥

अथ श्रीपतिवर्णनम् ।

अर्हत्सेवी जगद्वन्द्यः श्यामवर्णविराजितः ।
नरसिंहः सदानन्दः श्रीपतिर्जयति ध्रुवम् ॥३॥ अनेकार्थमनुष्टुप् छन्दः ।

नृपाख्यादौ वशाकृतिः (श्रीः)
कः[२०] कुर्यात्ससुखं पुरम् । (पतिः)
ब्रह्मचारिशिरोमौलि-यतीड्यः श्रीपतिश्च सः ॥४॥ अनुष्टुप्

---

१८. सं सुखे यच्छति सति घनिवासः । शरीरिणो वासो वस्त्रं यच्छति । १९. हे नाथ त्वामिति । त्वां ते पण्डिताः वरभ-विमलनाथं लघुतरकरणाद्विदुः अतः कृष्णात् विशेषं यथा स्यात्तथा मलनाथमित्यर्थः । कस्मात् लघुतरकरणादर्थान्म त्यजनात् । हे विमल, विगता मा येषां ते विमास्तान् लाति विमलस्तस्य नाथस्तं, दलिद्राधि-पतिमित्यर्थः । पुनर्वरभ० वरभाश्च ते वयश्च वरभवयस्तेषां बलं अनिष्टशब्दत्वान्मलेत्यस्य कथनं वरभविमलं तस्य नाथस्तं । विदूरतो विशेषदूरस्थाः, कीदृशास्ते ? ते पण्डिताः । पण्डिताः खण्डिताः पण्डितैः आ इति खेदे, खण्डिताः सुदोषीकृताः वा पण्डितासा पण्डितासनेन खण्डिताः । पण्डिताः खण्डिताः । वा आपं । आं पाति आपः कृष्णस्तं आपं । डो व्यञ्जनं डकारव्यञ्जनं, तेन इता गता डिता इत - - - रहिता इत्यर्थात्कृष्णं गता इत्यर्थः । पुनः विशेषं खण्डिताः । तु पुनः, आ समन्तात् । अस्य वा विशेषो यत्र तदाविशेषं यथा स्यात्तथा । ते । ते तव पण्डिता - इति त्वां हे वर हे भ, विमलनाथं लघुतरकरणात् जितेन्द्रियत्वात् । पुनर्लघुतरकरणात् ऊकारस्य ह्रस्वीकरणात् विदुः । कीदृशं नाथं - - विमलनाथं । २०. अग्रस्थकश्रवणादत्र केतिपदग्राह्यः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ काचित् सुजनशि [क्षा । (?)]

सत्केशमो(मौ)ली रतिरूपरम्या नामाभिरामा मितहर्षकामा ।
उच्चैस्तनद्वन्द्ववतीह रामा पुण्यं विना नो भवता च लभ्या ॥५॥
इन्द्रवज्रा

सम्पद्विपत्प्राप्त्यविमुक्तसङ्गा वादेऽविवादा[२१] सरुषीतिरोषा ।
सुप्ते तु सुप्तोत्थित[२२] उत्थितैव छायेव मोच्या न वशा स्वका शैः ॥६॥
इं०

लब्धोदया षट्सुखे[२३]मावहन्ती नीलाम्बरा स्वस्य गणे प्रधानम् ।
मध्याग[२४]रम्या रमणीयशब्दा नारी तटीव प्रथमा न हेया ॥७॥ इं०

विस्मापितो या दयया तटिन्या सार्वैरपि प्राणपरैरलङ्घ्या[२५] ।
प्रीत्या स नेमिर्विपशून्[२६] विमोच्य सूर्यादिमां[२७] प्राप पुरं वरोयम् ॥८॥
इं०

अथ जिनोऽपि मनोभवभीतिभिद् वितरणं तरणाय च वार्षिकम् ।
सुविधिना[२८] विधिनामनिवारकः[२९] पशुविधौ[३०]वि★ विधाय शुभं[३१] ययौ ॥१॥

सुतरुतामसे[३२]तामरसावृतं सुमनसां[३३] मनसां सुखदायकम् ।
ललितबालि[३४]कबालकभाजन[३५]-ममितरैमतिरैवतकाचलम् ॥२॥ द्रु० ।

---

२१. नास्ति वादो यस्यां साऽविवादा । वा विः पक्षी, तद्वद्वादो जल्पनं यस्याः सा विवादा । न विवादा अविवादा, वीणावादा इत्यर्थः । २२.. उत्थिते सति । २३. षण्णां सुषमा षट्सुषमा, षड्वसुशोभा, तां. । २४. गिरिरम्या । २५. लङ्घितुमशक्या । २६. विगताः पशवो येभ्यस्ते विपशवस्तान्विपशून् जनान् । किं दुःखमेतेषां तन्निषेधार्थस्त्वयं । वयश्च पक्षिणः पशवो मृगाद्यास्ततो द्वन्द्वेऽविरोधित्वाद्वा 'प्राण्यङ्गादीना'मित्यनेन वैकल्पिकबहुत्वं । वा वियुक्ताः पक्षियुक्ताः पशवो विपशवस्तान्विपशून् । युक्तशब्दलोपः । २७. सूरिर्विद्वानेव अः कृष्णः सूर्यः, स एवादौ यस्याः सा सूर्यादिमा तां, तथा पुरं द्वारकामित्यर्थः । २८. पुण्येन २९. विधातृनामविच्छेदकः । ३०. क्रमे । ३१. कल्याणं । ३२. सुता मृगादयस्तेषां रुतानि शब्दास्तैरा

★ इ इति लक्ष्मीं मङ्गलार्थं सम्बोध्य जिनं स्तुवन् रैवतकाचलं स्तौति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वसुमती सुमतीशे[३६]सुरप्रियं कपिकलासुकलापिगुरुं गुरुम् ।
मृगपतत्र्यगपत्रभरस्वरं सर उदारं[३७]मुदारमनोहरं[३८]रम् ॥३॥

तरणतारणरीतिविशारदं मुनिवरव्रजसेवितकन्दरम् ।
प्रतिपदं विधिमण्डितमन्दिरं घनतटीतटताडकपाटकम् ॥४॥

चतुर्भिः कलापकम् ।

सुरवधूसुरवो वरविक्रमो जिनगृहे[३९]नग्रहै[४०]नमरीचिभिः[४१] ।
अर्यं[४२]मपि [४३]स्पृहणीयविभो विभुर्बहुमहिः स्वमहीनमहीभृताम्[४४] ॥५॥

जिनपतामसमांगं[४५]गिरिं यति[४६] स्वपतिमार्गमुदारं[४७]कमाददे[४८] ।
अभयभावनभावनभासुर-प्रियमपि प्रमदा प्रमुदा सह ॥६॥ द्रु० ।

समन्तात् मा माया येषां ते सुतरुतामाः, सुतरुता-माश्च ते सन्तश्च तापसास्तेषां सुतरुतामसतां, अरसा गतश्रीस्तया वृतस्तं । यद्वा तमःसमूहस्तामसं, सुतरूणां तामसं सुतरुतामसं अन्धकारसमूहः अपारवृक्षनिवासत्वात् । तामरसानि कमलानि तैरावृतस्तं । यद्वा सुतरुता च मश्च शिवः, सतो भावः सता, श्लेषेन लोपः, अमरसा च अमरश्रीः । सुतरुतामसतामरसास्ताभिरावृतस्तं तथा । यद्वा सुशोभनास्तरवो येषां ते सुतरवः, एवंभूता ये तापसाः सुतरुतापसास्तेषां तापस्तपनं, सुतरुतापसतापस्तस्य रसा सुतरुतापसतापरसा, तया आवृतः सुत० तं तथा । [वा] सुतरव एव तापसाः सुतरुतापसास्तेषां तापस्तपनं, तस्य रसा भूमिस्तयाऽऽवृतंस्तं तथा । सुतरुतापसतापरसावृतमिति पाठान्तरार्थद्वयं । यद्वा - - - - - - - - प्रकरणात् सरागता, अस्य ज्ञानस्य रसो अरसो ज्ञानामृतरसस्तेन आवृतस्तं । ३३. देवानां सज्जनानां वा पुष्पानां(णां?) । ३४. सजलधरातो निस्सरणाद्बालं नवीनं यत् कं जलं बालकं, ललितं यद्बालकं ललितबालकं, तेन बालकभासा सा नवीनकान्तयो जना यत्र स तं । तथा यद्वा बालकं वनस्पतिविशेषं बालकं नवीनजलं च । बालकं च बालकं च बालकबालके, ललिते ये बालकबालके ललितबालकबालके, तयोर्भाजनं ललितबा० । यद्वा ललितवालैर्युक्तं कं मस्तकं येषां ते ललितवालकाः, एवंभूता ये बालकाः शिशवो ललितबालकबालकास्तद्भाः, सुजना यत्र स तं । अंबिकेष्मि (?) तयात्रां कर्तुकामागतसतंत्र बालकबालकभांसि विलोकितुं स्थितलोक इति भावः । ३५. अमिता रा द्रव्यं येषां तेऽमितरायस्तेषां मतिर्यत्र स एवंभूतो यो रैवतिकाचलः अ० तं तथा । ३६. वसुमती च सुमतीशश्च सुराश्च वा सुमतीशसुरश्च नेमिस्तेषां प्रिय इष्टस्तं तथा । ३७. ऊर्ध्वलक्ष्मीः । ३८. ननूदारमनोहरयोः को विशेषो ? य एवोदारार्थः स एव मनोहरार्थः । पुनरुक्तिद्युतिरत्र । तच्छिदियम् - उद् ऊर्ध्वं य आरो गमनं उदारः, तेन मनोहरः । ३९. स्वामी । ४०. सूर्यः । ४१. ऋषिकविप्रसिद्धं नाम, आद्यचक्रिसुतस्य च । ४२. उज्जयन्तः । ४३. [व]र्तते इति शेषः । ४४. निन्दायै सु अमो रोगो येषु ते स्वमा अतीवरोगाः, तैर्हीनाः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स जयति जिननेमिः श्रीवरावासवासः
स जयति जिननेमिः श्रीवरावासवासः ।
स जयति जिननेमिः श्रीवरावासवासः
स जयति जिननेमिः श्रीवरावासवासः ॥७॥

अ[अं]त्यस्योपरि शब्दानां विस्तरोऽत्र विचार्यताम् ।
कुत्रचित्तस्थयोगोऽपि प्राघूर्णकसमोऽस्ति सन् ॥८॥
व्यतन्वन् **साधुहर्षा**स्सत् **सुमतिलाभ**हेतवे ।
विद्वल्लक्ष्मणनिर्देशा-दावासवर्णनं लसत् ॥९॥

इति भवनवर्णनभवनभूषणे भूषणभवने अष्टमाष्टकम् ।

भक्त्या वा(वो)ज्झितपातकाः क्षितितले वो वै नमस्कारका
ये भव्या नृभवं मुदेत्यविपुलं पुण्यं प्रकुर्वन्ति ते ।
अर्हन्तो भवदाशिषा स्थिरहृदः श्राद्ध विभान्तूद्धतात् (?)
संख्यावद्यतयः श्रुताच्छमतयोऽस्मत्काव्यभव्यार्थिनः ॥१॥
मात्सर्यात्तो निजं वक्त्रं वक्रं ह्यतः करिष्यति ।
गतां च हीनतां सत्यं क्षुद्रकासस्य विग्रहः ॥२॥

वाचक साधुहर्षगणिविरचिते सदुचिते
भूषणभवनभवनभूषणकाव्यं सम्पूर्णमिति । श्रीरस्तु लेखकवाचकयोः ।

जैन देरासर, नानी खाखर-३७०४३५, कच्छ, गुजरात

स्वमहीना एवंभूता ये महीभृतः पर्वतास्तेषां १ । यद्वा स्वयुक्ता मही स्वमही, तस्या इनाः स्वामिनः स्वमहीनाः, एवंभूता ये महीभृतस्तेषां, तथा २ । यद्वा स्वेन द्रव्येण महो येषां ते स्वमहिनः स्वोत्सवा, एवंभूता इना राजानो यत्र ते स्वमहीनाः, एवंभूता ये महीभृतस्तेषां ३ । यद्वा अस्य महः अमहः कृष्णमहोत्सवः, अमहो विद्यते येषां ते अमहिनः, सुष्ठु शोभना अमहिनः स्वमहिनः, तेषांमिना येषु ते सु(स्व)महीनाः, एवंभूताश्च ते महीभृतश्च तेषां तथा ।४। यद्वा स्वेन मा येषां ते स्वमाः, तैर्हीनाः, शेषं तथैव, इत्थमन्येऽप्यर्था यथाबुद्धि कार्याः । स्वमहीनं यथा स्यात्तथा, अहीभृतां, अहयश्च इश्च अहयः, ताबिभर्त्ति(?) अहीभृतस्तेषां तथा । ४५. सप्तकूटं । ४६. गच्छति सति । ४७. उदारेण उद्गमनेन कं सुखं यत्र स उदारकस्तं तथा, वा उदारकं कमनीयं कं पानीय यत्र स उदार०, तं तथा सुअमः स्वमः । सु इति अमेति शेषस्तुतिः । ४८. जग्रहे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मरत्नदुर्लभत्वम्

- सं. मुनि कल्याणकीर्तिविजय

प्राञ्जल प्राकृतभाषामय आ कृतिना रचयिता शासनसम्राट-परमगुरु-आचार्यभगवन्त श्रीविजयनेमिसूरीश्वरजी महाराजना परमविद्वान् शिष्य प्रवर्त्तक मुनि श्रीयशोविजयजी छे. मूळे तेओ पाटणना अने जातिए प्रायः करीने भरवाड हता. नानपणमां ज अनाथ थई गयेला तेमने आठेक वर्षनी उंमरे अमदावादना कोई श्रावक पू. शासनसम्राट पासे मूकी गयेला.

तेमनो क्षयोपशम ते वखते एटलो मन्द के मात्र नमस्कार मन्त्र शीखतां तेमने छ महिना लागेला. तेमणे पू. शासनसम्राटने, पोताने दीक्षा आपवा माटे, घणी विनन्तिओ करेली, परन्तु पू. शासनसम्राटे तेमने समझावीने ना कहेली. पण एकवार बीजा कोई गृहस्थने दीक्षानी मंजूरी आपवाना प्रसंगे तेमणे दीक्षा लेवानी हठ पकडी. तेथी पू. शासनसम्राटे तेमने पोताना ज्ञानबळथी योग्य जाणी दीक्षा आपेली ।

दीक्षा बाद, पू. शासनसम्राटना आशीर्वादथी तेमनो क्षयोपशम एटलो खील्यो के तेओ दररोजना १०० श्लोको कण्ठस्थ करी शकता हता. तेमणे ज्ञाननी दरेक शाखामां ऊंडुं अने तलस्पर्शी अध्ययन करी अजोड अने अनुपम विद्वत्ता प्राप्त करी हती. साथे ज संस्कृतभाषा पर तेमनुं एटलुं प्रभुत्व हतुं के कोईपण विषय पर तेओ, पण्डितो अने विद्वानो साथे श्लोकबद्ध चर्चा करी शकता हता. तेमणे स्तुतिकल्पलता, प्रवर्त्तक यात्राप्रवास व. ग्रन्थोनी रचना करी छे अने अनेक संस्कृत-प्राकृत काव्योनी रचना करी छे.

तेओ, क्षयरोग लागु पडी जवाथी बहु नानी उंमरमां ज, महाव्रतोना आलापक सांभळतां समाधिपूर्वक काळधर्म पाम्या अने जैनशासनने एक आशास्पद महाविद्वान् साधुभगवन्तनी खोट पडी.

आ कृतिमां तेमणे धर्मरूपी रत्ननी प्राप्ति जीवने केटली दुर्लभ छे ते चिन्तामणि रत्नना दृष्टान्त सह जणाव्युं छे. तेमां प्रथम सात श्लोकमां धर्मनुं माहात्म्य बताव्युं छे. त्यारबाद ८ थी ४७ श्लोक सुधी, चिन्तामणि रत्ननी प्राप्ति केटली दुर्लभ छे ते देखाडवा माटे श्रेष्ठिपुत्र जयदेव अने पशुपालकनुं दृष्टान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्यन्त रोचक शैलीमां वर्णव्युं छे. अने छेल्ले, ४८ थी ५२ श्लोकोमां दृष्टान्तनो उपनय दर्शाव्यो छे तथा छेल्ला श्लोकमां उपदेश आपी तेमणे कृतिनी समाप्ति करी छे.

कृतिमां कुल ५३ श्लोको छे. तेमां ९मो श्लोक मालिनी छन्दमां छे, शेष सर्व श्लोको अनुष्टुप् छन्दमां छे. दरेक श्लोकनी संस्कृतच्छाया पण तेमणे ज साथे आपेली छे. आखी ये कृति प्रवर्त्तकजी महाराजना पोताना हस्ताक्षरोमां उपलब्ध छे.

धर्मरत्नदुर्लभत्वम्

असारे इत्थ संसारे, दुलहं मणुअत्तणं ।
दुलहो तत्थ धम्मो वि, जिणकुंजरदेसिओ ॥१॥
चिंतामणी जहा नेव, सुलहो तुच्छपाणिणो ।
तहा गुणविहीणस्स, धम्मो अत्थि हु दुल्लहो ॥२॥
धम्मा रज्जं सया होइ, विउलं बलसंजुअं ।
धम्माओ बलदेवो य, धम्माओ उ नरेसरो ॥३॥
धम्माओ चक्कवट्टी य, धम्माओ बलवं जणो ।
धम्मा देवो तहा होइ, विउलिड्ढिजुओ सुओ ॥४॥
धम्माओ होइ देविंदो, धम्मा देविंदवंदिओ ।
धम्मा आयू तहा दीहं, धम्मा होइ मुणीसरो ॥५॥
धम्मा तित्थंगरो होइ, धम्माओ य गणेसरो ।
धम्माओ हवई सोक्खं, धम्माओ अ पवत्तओ ॥६॥
धम्माओ हवई थेरो, धम्मा मोक्खं गया जणा ।
धम्मा सव्वत्थसंपत्ती, नत्थि धम्मा विणा सुहं ॥७॥
पसुवालस्स दिट्ठंतो, वुच्चई समयाणुगो ।
भावेयव्वो पयत्तेण, बुहेहिं सव्वहा वरो ॥८॥
विबुहजणसमेयं सव्वहा सोहणिज्जं
पवरहरिसुरक्खं सव्वआ सव्वदक्खं ।
हरिपुरमिव सिद्धं पुण्णओ संगरिद्धं
इह विजयसमत्थं हत्थिणाऊरमत्थि ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ सिट्ठी गरिट्ठोऽत्थि नागदेवाभिहाणओ ।
सुद्धसीलधरा तस्स गेहिणी उ वसुंधरा ॥१०॥
तत्तणओ विणओज्जोओ मइधिइविराजिओ ।
नामेण जयदेवोऽत्थि सव्वविन्नाणसोहिओ ॥११॥
सो बारससमाओ य सायरं सिक्खई सया ।
सिग्घं सुरयणन्नाणं दक्खो विणयउज्जुओ ॥१२॥
चिंतियत्थप्पदाणेण जहत्थमभिहाणओ ।
चिंतामणिं पमुत्तूण उवले गणई मणी ॥१३॥
चिंतामणिकडे सो उ सकले भमिओ पुरे ।
अचिंतंतो विसेसेण हट्टं हट्टे घरं घरे ॥१४॥
दुलहस्स न तस्सेह लाहो जाओ पुरे वरे ।
चिंतामणिकए तो सो गओ अन्नत्थ पेमओ ॥१५॥
नगरे निगमे गामे आगरे कब्बडे तहा ।
पत्तणे जलहीतीरे भमई सुइरं तओ ॥१६॥
अलहिज्जंतो सखेओऽह सव्वत्थ भमिओ वि य ।
अत्थि नत्थि त्ति चिंताए पडिओ जयदेवओ ॥१७॥
'सत्थुत्तमन्नहा नेव होइ'त्ति हियतक्कणो ।
पुणो य भमणोस्सूओ मणीखाणीम्मि सो गओ ॥१८॥
तओ एगेण वुड्ढेण भणिओ पेमओ परं ।
'अत्थि मणीवई इत्थ मणीखाणी सुसोहणी' ॥१९॥
पमोअभरिओ सोऽह गओ अग्गे मणीकए ।
एगो य मिलिओ तस्स गोवालो अहियं जडो ॥२०॥
वत्तुलो उवलो तस्स हत्थे सव्वसुसोहणो ।
दिट्ठो य गहिओ चेव नाओ चिंतामणि त्ति य ॥२१॥
याचिओ तेण पुण्णेण पसुवालस्स अंतिए ।
'कज्जं किमत्थि एएण ?' भणिओ तेण सो इइ ॥२२॥
'सगिहे कीलणं दाहं बालाणं' भणई इइ ।
तस्सऽट्ठं जयदेवो सो मायामोहेण लोहओ ॥२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'एरिसा बहुणो इत्थ'गोवो सो भणइ तओ ।
'गिहस्स गमणोस्सूओऽह'मिति पुण जंपियं ॥२४॥
'एस देओ तओ मज्झ वत्तुलो उवलो वरो ।
तए अण्णो उ घेत्तव्वो जहिच्छाए मणोरमो' ॥२५॥
उवगाररहिओ सो अ न य देई तहा वि य ।
उवगारकारओ सिट्ठिसुओ भणइ बालिसं ॥२६॥
'जइ भद्द ! न देहीमं मणिं मं पि तहा वि हु ।
आराहसु सयं जेण एसो देइ सुचिंतियं' ॥२७॥
तया भणइ गोवालो 'सच्चमेयं जया तया ।
बोर-कब्बरमाई सो देउ मज्झ बहू लहुं' ॥२८॥
हसिओ जंपइ सिट्ठि-सुओ 'नेव कया वि य ।
भद्द ! चिंतिज्जए एवं गोवाल ! गुरुडंबर ! ॥२९॥
उववासतिगेणंत-रत्तिमुहे पमोअओ ।
लित्तमहीअले सुचि-पट्टे य न्हवियं मणिं ॥३०॥
कप्पूर-कुसुमाईहिं पूइउं विहिणा तहा ।
नमिय तो चिंतणिज्जं जं तं पभाए अ पावइ' ॥३१॥
सोउं सो बालिसो इइ छालिआगाममागओ ।
'एसोऽपुण्णस्स हत्थे न हविस्सइ'त्ति चिंतिय ॥३२॥
सिट्ठिसुओ न पुट्ठिं च तस्स छंडेइ कोविओ ।
गच्छंतो पसुवालो अ मणिं जंपइ 'हे मणि ! ॥३३॥
अहुणा छागिआ सव्वा विक्किणिय तुह हुअं ।
पूयं काहामि कप्पूर-कुसुमाइसुवत्थुहिं ॥३४॥
चिंतियस्स प्पदाणेण भवं होउ जहत्थओ' ।
तेणेवमुल्लवंतेण एयं पि भणियं पुणो ॥३५॥
'दूरे गामोऽत्थि मे इत्तो तो कहेसु कहं तुमं ।
अन्नहा मे कहंतस्स एगग्गो निसुणेसु तं ॥३६॥
देवालयमेगहत्थं देवो तत्थ चउब्भुओ' ।
पुणरुत्तं इइ वुतो जंपए जाव नेव सो ॥३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणइ ताव रुट्ठो सो 'हुंकारमपि केवलं ।
जइ देसि न मे ? आसा केरिसी चिंतिए तया ? ॥३८॥
चिंतामणि त्ति ते नाम मुसा जंपिज्जए सया ।
तुह संपत्तीए नेव चिंता फिट्टेइ मे मणे ॥३९॥
रध्धा-तक्केहि योऽहं तु विणा ठाउं न सक्किओ ।
खणमवि न सोहं किं मरामि उववासओ ? ॥४०॥
तम्मारणकए मज्झ वण्णिओ सो उ तेण य' ।
भणित्तु इय तेणेसो लंखिओ सो उ संमणी ॥४१॥
नमित्तु जयदेवो सो चिंतामणिं गहित्तु य ।
नयराभिमुहं सिट्ठी चलिओ जयदेवओ ॥४२॥
विहिणाऽऽराहिओ तेण जयदेवेण सो मणी ।
चिंतियत्थप्पदाणेण सच्चं चिंतामणी स उ ॥४३॥
मणिमाहप्पओ मग्गे वेहवोल्लसिओ पुरे ।
सुबुद्धिसिद्धिणो धूयं वूढो य रयणावइं ॥४४॥
परिवारजुओ चेव जणगीयगुणो तहा ।
संपत्तो नियनयरं पणओ पियराण य ॥४५॥
वण्णिओ बहुमाणेण सो तेहिमभिणंदिओ ।
रण्णा पसंसिओ चेव आणंदभरिओ पुणो ॥४६॥
थुणिओऽसेसलोगेहिं भावेहिं भूरिमाणओ ।
भोगाणं भायणं जाओ सव्वहा जयदेवओ ॥४७॥
उवणओ य नायस्स नायव्वोऽयं बुहोइओ ।
अन्नमणिखणितुल्ला देवाईणं गई जओ ॥४८॥
मणिवईसमा चेव माणवेण लहिज्जइ ।
मणुस्ससुगई सव्व-पुण्णरासिवसेण य ॥४९॥
जिणेहिं जियदोसेहि सोहिएहिं सिरीहि य ।
चिंतामणिसमो तत्थ धम्मोऽत्थि अइदुल्लहो ॥५०॥
पसुवालो जहा नेव पत्तो चिंतामणिं मणिं ।
वणिपुत्तस्स पुण्णस्स लाहो जाओ मणिस्स य ॥५१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तहा गुणविहीणो जो माणवो भुवणे न सो ।
पावइ धम्मरयणं गुणाकिण्णो उ पावई ॥५२॥
निसम्मेवं सुदिट्ठंतं सद्धम्मरयणे जइ ।
इच्छा हवेज्ज तो निच्चं करेह गुणअज्जणं ॥५३॥

संस्कृतच्छाया :

असारे अत्र संसारे, दुर्लभं मनुजत्वम् ।
दुर्लभस्तत्र धर्मोऽपि, जिनकुञ्जरदेशितः ॥१॥
चिन्तामणिर्यथा नैव, सुलभस्तुच्छप्राणिनः ।
तथा गुणविहीनस्य, धर्म्मः अस्ति खु(खलु) दुर्लभः ॥२॥
धर्माद् राज्यं सदा भवति, विपुलं बलसंयुतम् ।
धर्माद् बलदेवश्च, धर्माच्चैव (धर्मात् तु) नरेश्वरः ॥३॥
धर्मात् चक्रवर्ती च, धर्माद् बलवान् जनः ।
धर्माद् देवस्तथा भवति, विपुलर्द्धियुतः श्रुतः ॥४॥
धर्माद् भवति देवेन्द्रः, धर्माद् देवेन्द्रवन्दितः ।
धर्मादायुस्तथा दीर्घं, धर्माद् भवति मुनीश्वरः ॥५॥
धर्मात् तीर्थकरो भवति, धर्माच्च गणेश्वरः ।
धर्माद् भवति सौख्यं, धर्माच्च प्रवर्त्तकः ॥६॥
धर्माद् भवति स्थविरः, धर्मान्मोक्षं गता जनाः ।
धर्मात् सर्वार्थसंपत्तिः, नाऽस्ति धर्माद् विना सुखम् ॥७॥
पशुपालस्य दृष्टान्तः, उच्यते समयानुगः ।
भावयितव्यः प्रयत्नेन, बुधैः सर्वदा वरः ॥८॥
विबुधजनसमेतं सर्वथा शोभनीयं
प्रवरहरिसुरक्षं सर्वदा सर्वदक्षम् ।
हरिपुरमिव श्रेष्ठं पुण्यतः संगरिष्ठं
इह विजयसमर्थं हस्तिनापुरमस्ति ॥९॥
तत्र श्रेष्ठी गरिष्ठोऽस्ति, नागदेवाभिधानतः ।
शुद्धशीलधरा तस्य गेहिनी तु वसुन्धरा ॥१०॥
तत्तनयो विनयोद्योतो मति-धृतिविराजितः ।
नाम्ना जयदेवोऽस्ति सर्वविज्ञानशोभितः ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स द्वादश समाश्च सादरं शिक्षते सदा ।
शीघ्रं सुरत्नज्ञानं दक्षो विनयोद्युतः ॥१२॥
चिन्तितार्थप्रदानेन यथार्थमभिधानतः ।
चिन्तामणिं प्रमुच्य उपलान् गणयति मणीन् ॥१३॥
चिन्तामणिकृते स तु सकले भ्रान्तः पुरे ।
विशेषेण हट्टाद् हट्टे गृहाद् गृहे ॥१४॥
दुर्लभस्य न तस्येह लाभो जातः पुरे वरे ।
चिन्तामणिकृते तस्मात् स गतोऽन्यत्र प्रेमतः ॥१५॥
नगरे निगमे ग्रामे आकरे कर्बटे तथा ।
पत्तने जलधितीरे भ्रमति सुचिरं ततः ॥१६॥
अलभमानः सखेदोऽथ सर्वत्र भ्रान्तोऽपि च ।
अस्ति नाऽस्तीति चिन्तायां पतितो जयदेवकः ॥१७॥
'शास्त्रोक्तमन्यथा नैव भवती'ति हृदयतर्कणः ।
पुनश्च भ्रमणोत्सुको मणिखानौ स गतः ॥१८॥
तत एकेन वृद्धेन भणितः प्रेमतः परम् ।
'अस्ति मणीवती अत्र मणिखानी सुशोभनी' ॥१९॥
प्रमोदभरितः सोऽथ गतोऽग्रे मणिकृते ।
एकश्च मिलितस्तस्य गोपालोऽधिकं जडः ॥२०॥
वर्तुल उपलस्तस्य हस्ते सर्वसुशोभनः ।
दृष्टश्च गृहीतश्चैव ज्ञातश्चिन्तामणिरिति च ॥२१॥
याचितस्तेन पुण्येन पशुपालस्य अन्तिके ।
'कार्यं किमस्ति एतेन ?' भणितस्तेन स इति ॥२२॥
'स्वगृहे क्रीडनं दास्ये बालानां' भणति इति ।
तस्याऽर्थं जयदेवः स मायामोहेन लोभतः ॥२३॥
'ईदृशा बहवोऽत्र' गोपः स भणति ततः ।
'गृहस्य गमनोत्सुकोऽह'मिति पुनर्जल्पितम् ॥२४॥
'एष देयस्ततो मह्यं वर्तुल उपलो वरो ।
त्वयाऽन्यस्तु ग्रहीतव्यो यदृच्छया मनोरमः' ॥२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकाररहितः सोऽथ न च ददाति तथाऽपि च ।
उपकारकारकः श्रेष्ठिसुतो भणति बालिशम् ॥२६॥
'यदि भद्र ! न देहीमं मणिं मेऽपि तथाऽपि च ।
आराधय स्वयं येन एष ददाति सुचिन्तितम्' ॥२७॥
तदा भणति गोपालः 'सत्यमेतद् यदा तदा ।
बदर-कर्बरादि स ददातु मे बहु लहु' ॥२८॥
हसितो जल्पति श्रेष्ठि-सुतो 'नैव कदाऽपि च ।
भद्र ! चिन्त्यते एवं गोपाल ! गुरुडम्बर ! ॥२९॥
उपवासत्रिकेनाऽन्त्यरात्रिमुखे प्रमोदतः ।
लिप्तमहीतले शुचि-पट्टे च स्नपितं मणिम् ॥३०॥
कर्पूर-कुसुमादिभिः पूजयित्वा विधिना तथा ।
नत्वा तस्माच्चिन्तनीयं यत् तत् प्रभाते च प्राप्नोति' ॥३१॥
श्रुत्वा स बालिश इति छालिकाग्राममागतः ।
'एषोऽपुण्यस्य हस्ते न भविष्यती'ति चिन्तयित्वा ॥३२॥
श्रेष्ठिसुतो न पृष्ठं च तस्य जहाति कोविदः ।
गच्छन् पशुपालश्च मणिं जल्पति 'हे मणे ! ॥३३॥
अधुना छागिकाः सर्वाः विक्रीय तव द्रुतम् ।
पूजां करिष्यामि कर्पूर-कुसुमादिसुवस्तुभिः ॥३४॥
चिन्तितस्य प्रदानेन भवान् भवतु यथार्थतः' ।
तेनैवमुल्लपता एतदपि भणितं पुनः ॥३५॥
'दूरे ग्रामोऽस्ति मे इतस्ततः कथय कथां त्वम् ।
अन्यथा मे कथयतः एकाग्रो निशृणु त्वम् ॥३६॥
देवालय एकहस्तः देवस्तत्र चतुर्भुजः' ।
पुनरुक्तमिति उक्तः जल्पति यावन्नैव सः ॥३७॥
भणति तावद् रुष्टः स 'हुङ्कारमपि केवलं ।
यदि ददासि न मे ? आशा कीदृशी चिन्तिते तदा ? ॥३८॥
चिन्तामणिरिति ते नाम मृषा जल्प्यते सदा ।
तव संप्राप्त्या नैव चिन्ता नश्यति मे मनसि ॥३९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रब्धा-तक्रैर्योऽहं तु विना स्थातुं न शक्तः ।
क्षणमपि न सोऽहं किं म्रिये उपवासतः ? ॥४०॥
तन्मारणकृते मे वर्णितः स तु तेन च' ।
भणित्वेति तेनैष क्षिप्तः स तु सन्मणिः ॥४१॥
नत्वा जयदेवः स चिन्तामणिं गृहीत्वा च ।
नगराभिमुखं श्रेष्ठी चलितो जयदेवकः ॥४२॥
विधिनाऽऽराधितस्तेन जयदेवेन स मणिः ।
चिन्तितार्थप्रदानेन सत्यं चिन्तामणिः स तु ॥४३॥
मणिमाहात्म्यतो मार्गे वैभवोल्लसितः पुरे ।
सुबुद्धिश्रेष्ठिनो दुहितरं व्यूढश्च रत्नवतीम् ॥४४॥
परिवारयुतश्चैव जनगीतगुणस्तथा ।
सम्प्राप्तो निजनगरं प्रणतः पितरौ च ॥४५॥
वर्णितो बहुमानेन स तैरभिनन्दितः ।
राज्ञा प्रशंसितश्चैव आनन्दभृतः पुनः ॥४६॥
स्तुतोऽशेषलोकैः भावैर्भूरिमानतः ।
भोगानां भाजनं जातः सर्वथा जयदेवकः ॥४७॥
उपनयश्च ज्ञातस्य ज्ञातव्योऽयं बुधोदितः ।
अन्यमणिखनितुल्या देवादीनां गतिर्यतः ॥४८॥
मणि-पतिसमा चैव मानवेन लभ्यते ।
मनुष्यसुगतिः सर्व-पुण्यराशिवशेन च ॥४९॥
जिनैर्जितदोषैः शोभितैः श्रीभिश्च ।
चिन्तामणिसमस्तत्र धर्मोऽस्ति अतिदुर्लभः ॥५०॥
पशुपालो यथा नैव प्राप्तश्चिन्तामणिं मणिम् ।
वणिक्पुत्रस्य पुण्यस्य लाभो जातो मणेश्च ॥५१॥
तथा गुणविहीनो यो मानवो भुवने न सः ।
प्राप्नोति धर्मरत्नं गुणाकीर्णस्तु प्राप्नोति ॥५२॥
निशम्यैवं सुदृष्टान्तं सद्धर्मरत्ने यदि ।
इच्छा भवेत् तदा नित्यं कुरुत गुणार्जनम् ॥५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिभाषामयी श्रीनेमिसूरीश्वरस्तुतिः

सं. मुनिकल्याणकीर्तिविजय

पूज्यशासनसम्राटश्रीना परमविद्वान् शिष्य प्रवर्त्तकमुनि श्रीयशोविजयजी महाराजे पोताना गुरुभगवन्तनी स्तुतिओ संस्कृत-प्राकृत भाषामां अनेक रीते रचेली छे. परन्तु आ प्रकार तेमां नवी ज भात पाडे छे.

अहीं तेमणे प्राकृतभाषा, शौरसेनीभाषा तेमज मागधीभाषामां, त्रण अथवा बे, अनुष्टुप् छन्दमां रचेल श्लोको द्वारा पू. शासनसम्राटनी स्तवना करी छे. साथे ज, दरेक श्लोकनी संस्कृतच्छाया पण तेमणे पोते ज लखी छे.

स्तुतिना भावो अत्यन्त गम्भीर छे. साहित्यनी दृष्टिए पण तेमांनुं काव्यतत्त्व अत्युत्तम अने अलङ्कारादिथी परिपूर्ण छे.

आवा प्रकारनी स्तुतिओ पहेलां पण अनुसन्धानमां प्रकट थई चूकी छे, जेमां आठ भाषामां अथवा छ भाषामां जिनेश्वरभगवन्त व.नी स्तुति करवामां आवी छे.

अथ प्राकृतम्

पिंगियसंजमं नेमिं चच्छियकुमयं मुणिं ।
वंफामि गुरुमेगं णं दुक्खहरणदक्खिणं ॥१॥
अज्झीणतणुतेअं हं नयनाणविअक्खणं ।
वेरग्गकारअं सूरिं भत्तीए णं नवामि जे ॥२॥
विन्नवेमि गुरू नेमे ! सुयधम्मसुदेसग ! ।
पावप्पणासणा नाह ! अत्थु भत्ती तुमं सया ॥३॥

संस्कृतच्छाया :

गृहीतसंयमं नेमिं तष्टकुमतं मुनिम् ।
काङ्क्षामि गुरुमेकं तं दुःखहरणदक्षिणम् ॥१॥
अक्षीणतनुतेजसमहं नयज्ञानविचक्षणम् ।
वैराग्यकारकं सूरिं भक्त्या तं नमामि ॥२॥
विज्ञापयामि गुरो ! नेमे ! श्रुतधर्मसुदेशक !
पापप्रणाशना नाथ ! अस्तु भक्तिस्तव सदा ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❁

अथ शौरसेनी

अय्यावत्तं समग्गं खु चरित्तसिरिसोहिद ! ।
सुसत्तीए अपुव्वाए तायध नाध ! अम्महे ॥१॥
जयस्सोत्तंस ! कित्तीए गुरुभावं गदो मदो ।
कदकज्जो इधं नाध ! भोदु भद्दंकरो भवं ॥२॥

संस्कृतच्छाया :

आर्यावर्तं समग्रं खलु चारित्रश्रीशोभित !
सुशक्त्या अपूर्वया त्रायस्व नाथ ! (हर्षेण) ॥१॥
जगत उत्तंस ! कीर्त्या गुरुभावं गतो मतः ।
कृतकार्य इह नाथ ! भवतु भद्रङ्करो भवान् ॥२॥

❁

अथ मागधी

पलमपदमोऽकस्स देशयं शाहुशोभणं ।
शुभोवदेशदादालं पञ्ञपञ्ञं सुपञ्ञलं ॥१॥
अपस्खलिदविञ्ञाणं आलाथिदशलश्शदिं ।
नेमिं सुपधवञ्ञंदं शावय्यलहिदं मुणिं ॥२॥
विवय्यिदकशायं णं भवकस्टविघस्टनं ।
थुणामि शूलिं शाहुं हं तवगश्चदिवप्फदिं ॥३॥

संस्कृतच्छाया :

परमपदमोक्षस्य देशकं साधुशोभनम् ।
शुभोपदेशदातारं प्राज्ञप्रज्ञं सुप्राञ्जलम् ॥१॥
अप्रस्खलितविज्ञानं आराधितसरस्वतीम् ।
नेमिं सुपथव्रजन्तं सावद्यरहितं मुनिम् ॥२॥
विवर्जितकषायं तं भवकष्टविघट्टनम् ।
स्तवीमि सूरिं साधुमहं तपगच्छदिवस्पतिम् ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक विज्ञप्तिपत्र

सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

भूमिका

शिष्यपरिवार अथवा संघ द्वारा गुरुभगवन्त प्रत्ये लखायेला विज्ञप्तिपत्रोनां साहित्यिक मूल्य अने ऐतिहासिक महत्ता विशे अनेक स्थळे घणुं घणुं लखायुं होवाथी, आ भूमिकामां तेनुं पिष्टपेषण नहीं करता फक्त विषयदर्शननो ज उपक्रम रखायो छे.

प्रस्तुत विज्ञप्तिपत्र सं. १८६२मां **जोधपुरथी श्रीमनरूपविजयजीए, राधनपुर** बिराजमान तपगच्छपति **श्रीविजयजिनेन्द्रसूरिजी**ने पाठव्यो छे. चातुर्मासनी विनन्ति सम्बन्धी आ पत्र श्रीसंघवती लखवामां आव्यो छे. पत्र संस्कृत अने गुजराती भाषामां लखायो छे. घणे ठेकाणे 'इकलास, जिंद, सिफत' जेवा अरबी-फारसी शब्दो पण वपराया छे. पत्रमां गजल, ढाल, दूहा, छप्पय, कवित्त, सज्झाय जेवा विविध काव्यप्रकारो प्रयोजाया छे. काव्यशैली अत्यन्त प्रासादिक छे.

पत्रमां सौप्रथम संस्कृतश्लोकोथी श्रीआदिनाथ व.नी स्तुति करवामां आवी छे. त्यारबाद गुर्जरभाषामां काव्यरचनानो प्रारम्भ करता मंगल तरीके पंचजिननी स्तुति करवामां आवी छे. त्यारपछी दूहाओमां राधणपुरनुं सुन्दर वर्णन करवामां आव्युं छे.

विज्ञप्तिपत्रोमां गुरुस्तुति अने विविध बाबतोनुं वर्णन- ए बे मुख्य वातो होय छे. तदनुसार आमां पण त्रण ढाल अने वच्चे दस दूहा द्वारा **विजयजिनेन्द्र-सूरिजी**नी स्तुति करवामां आवी छे. १थी मांडी १०८ सुधीना अंको आ स्तुतिमां प्रयोजाया छे. अंकयोजनानी आ परिपाटी बहु जूनी छे. आमां कोई पण प्रकारे अंकोने योजवा-ए ज मुख्य लक्ष्य बनतुं होवाथी, क्यांक काव्यतत्त्व न जळवायुं होय एम पण लागे. प्रस्तुत योजनामां घणा जैनधार्मिक पदार्थो उपयोगमां लेवाया छे, तेथी तेने समजवा जैनशास्त्रोनुं ज्ञान जरूरी बने छे.

त्यारपछी आवेली **जिनेन्द्रसूरिजी**नी लांबी बिरुदावली अने तेमना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्संगी श्रावक-श्राविकाओनी प्रशंसा मनने आकर्षे एवी छे. दूहाओमां करेलुं मरुधरदेशनुं वर्णन पण सुन्दर छे.

पण कविनी मोहक काव्यकलानी चमत्कृति तो हवे आवती गजलमां बराबर अनुभवाय छे. प्रथम दूहा अने कवित्त अने त्यारबाद लगभग १०० जेटली कडीओमां पथरायेली गजलचाल खरेखर मध्यकालीन-गुर्जर-काव्य-कृतिओमां अग्रपंक्तिमां आवे तेवी छे. जोधपुर नगरनुं वर्णन ए आ गजलनो मुख्य विषय छे. आ गजलमांथी ऐतिहासिक माहिती पण घणी तारवी शकाय तेम छे. जेमके- ते समये जोधपुरनो राजा **मानसिंघ** हतो, ते **जालंधरनाथ**नो भक्त हतो, जोधपुरमां जालंधरनाथनुं देहरुं हतुं वगेरे. आ पछीनी जोधपुर-वर्णननी ज ढाल पण कविने यश अपावे तेवी छे. त्यार पछीना दूहा कविरचित नहीं पण लोकप्रचलित लागे छे. आनी साथे गुरुगुणकीर्तननुं संस्कृतभाषामय एक अष्टक पण कविए रचीने मूक्युं छे. अने त्यारपछीनी राधणपुर-नगरवर्णननी गजल तो काव्यकलानो उत्तम नमूनो गणी शकाय.

आटले सुधी तो वर्णनमात्र ज छे. पत्रनो मुख्य भाग तो हवे आवे छे. आ भाग सम्भवत: संघे पोते लखेलो छे. अक्षरो थोडा वांकाचूंका होवाथी ओळखवा मुश्केल छे. केटलीक जग्याए अर्थ पण बराबर समजातो न होवाथी संशोधन करवुं अघरुं छे. **पं. मनरूपविजयजी**ना चोमासाथी खुश थयेला संघे तेमने ज बीजीवार चोमासुं राखवानी विनन्ति करी छे. **वखतविजयजी** सम्बन्धित कोइक प्रश्न पण उकेलवानी संघनी विनन्ति छे. आ पछी **जिनेन्द्रसूरिजी**नी सज्झाय छे, जेमां तेओने जोधपुर पधारवानी विनन्ति करवामां आवी छे. त्यारबाद दूहाओमां **जिनेन्द्रसूरिजी** साथे स्थित पूज्योने नामग्रहणपूर्वक वन्दना करवामां आवी छे.

छेल्ले **पं. मनरूपविजयजी** वगेरे मुनिओनां नाम अने संघना मुख्य श्रावकोनां नाम आपवामां आव्यां छे. अने त्यारबाद जैनपरम्परामां गुरुवन्दन माटे प्रयोजातो अब्भुट्ठिओ सूत्रनो पाठ लखवामां आव्यो छे. अत्रे आ पत्र सम्पूर्ण थाय छे.

श्रीपूज्य **श्रीविजयजिनेन्द्रसूरि श्रीविजयधर्मसूरिजी**ना पट्टधर हता. तेओ वि.सं. १८४१ थी १८८४ सुधीना कालमां तपगच्छना अधिपति हता तेवो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास-फकरो ९९९मां मळे छे. आ पत्रना रचयिता **पं. मनरूपविजयजी, खुशालविजयजीना** प्रशिष्य अने **पद्म-विजयजीना** शिष्य हता, तेवुं आ पत्रमांथी जाणवा मळे छे. आ सिवाय तेओ विशेनी अन्य माहिती अनुपलब्ध छे. पत्र लखनार **कलंबी** वंशना **रिदयराम** हता. तेओ **गाजल्दिखांन** नवाबना कामदार हता तेवुं तेओए स्वयं जणाव्युं छे.

आ विज्ञप्तिपत्र सं. १८६२ना फागण महिनामां लखायो हतो, पण तेमां समावायेला काव्योनी रचना अलग-अलग समये थई हती, तेवुं ते ते काव्यना अन्ते जणावायेला समय परथी लागे छे.

आ विज्ञप्तिपत्र पूज्य गुरुदेव आचार्यश्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजीना निजीसंग्रहनो छे. पत्रनी पहोलाई लगभग १ फूट अने लम्बाई १० फूटथी वधारे छे. अक्षरो घणा ज सरस छे. आ पत्रना सम्पादनमां पूज्य उपाध्याय श्रीभुवनचन्द्रजी म.नुं अमूल्य मार्गदर्शन प्राप्त थयुं छे.

आ साथे प्रकाशित उत्तम विज्ञप्तिपत्रोनी शृंखलामां वधु एक अंकोडो जोडाय छे, ते हर्षप्रद बीना बनी रहे छे.

विज्ञप्तिपत्र : वाचना

श्रीमदादिनाथाय नमः । श्रीमच्छान्तिनाथाय नमः ।
श्रीमन्नेमिनाथाय नमः । श्रीमत्पार्श्वनाथाय नमः ।
श्रीमन्महावीराय नमः । श्रीमद्गुरुगणपतीष्टदेवेभ्यो नमः ।

अथ प्रथम(मं) पञ्चपरमेष्ठी(ष्ठि)नां स्तुतिर्लिख्यते ।

॥ काव्यम् ॥

स्वस्ति श्रीवरनाभिनन्दनजिनं चिद्भासमानं सना,
सौवर्णामृतगद्यपद्यरचनाभिर्देवनाथैः स्तुतम् ।
गाङ्गेयार्भ[1]मशेषपापशिखरी(रि)व्याधाम[2]साधारणं,
श्रीशत्रुञ्जयभूधरे शमधिके श्रीमारुदेवं स्तुवे ॥१॥

॥ श्री आदिजिनस्तुति ॥ (शार्दूल०)

१. सुवर्ण जेवी कान्तिवाला । २. वज्र ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

येनाऽकारि च पूर्वतोऽपि जननीकुक्षो(क्षौ)समागत्य हि,
शश्वच्छान्तिरपीहिता समजनैः सर्वेषु नीवृत्स्वपि ।
लब्ध्वाऽथो वरराज्यमेवममलं संसाध्य सर्वां धरां,
भेजे सिद्धिवधु(धू)र्ददातु स शुभं सङ्घस्य शान्तिर्जिनः ॥२॥

॥ श्रीशान्तिजिनस्तुति ॥

सद्भोगोद्भवचारुशर्म्मनियतं त्यक्त्वा हि यः शैशवे,
सद्राज्यं तृणवत् तथापि रुचिरं राजीमतीसुन्दरीम् ।
छित्त्वा रेवतके तपोभिरनघैः कर्म्माष्टकं चाऽष्टकं,
प्राप्तो मोक्षपदं स नेमिभगवान् देयाच्च शं शासने ॥३॥

॥ श्रीनेमिजिनस्तुति ॥

येनाऽप्लायि(वि) च शैशवे भगवता यस्यां सुसिन्धो(न्धौ) सना,
सा जाता सुरदीर्घिका भुवि सदा भव्यात्मनां तारिणी ।
प्राज्यैनःप्रतिबन्धमन्थनकरी पुण्यप्रकुल्या सतां,
से(सो)ऽयं वः शिवतातिरस्तु सततां(तं) श्रीपार्श्वति(ती)र्थेश्वरः ॥४॥

॥ श्री पार्श्वजिनस्तुति ॥

भुवनहरिसमानं ध्वस्तकन्दर्प्पमानं,
प्रतिदितमलमानं तेजसा वर्द्धमानम् ।
अमरविहितमानं सप्तहस्ताङ्गमानं,
धृतनियमसुमानं संस्तुवे वर्द्धमानम् ॥५॥

॥ श्रीवर्द्धमानजिनस्तुति ॥ (मालिनी)

या गि(गी)र्भाति जिनाधिराजवदने शश्वत्प्रभाभारती,
जाड्यध्व(ध्वा)न्तप्रचारचक्रदलनी सत्कोटीसूरप्रभै[ः] ।
रम्याऽशेषसुभाषिका प्रविलसल्लासाधिसंशालिनी,
सा नित्यं मतिदा प्रबोधविशदा भूयात् सतां संसदि ॥६॥

॥ इति श्रीजिनराजवाणीस्तुति ॥ (शार्दूल०)

कलिततिप्रविनाशी सर्वकामप्रदश्च,
अशुभभयवितानोन्माथतं(ने)शक्त एव ।
निजजनसकलासा(शा)पूरणे कल्पशाखी,
वितरतु कुशलं श्रीमाणभद्राख्ययक्षः ॥७॥ (मालिनी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं पञ्चजिनाधीशान्, जिनवाणीं तथैव च ।
श्रीमाणभद्रयक्षं च, नत्वा लेखः प्रलिख्यते ॥८॥
अष्टभिः कुलकम् ॥

अथ भाषामयी पञ्चपरमेष्ठी(ष्ठि)नां स्तुतिः ॥

॥ दूहा ॥

स्वस्ति श्रीसुखसंपदा, आंणी अधिक उच्छाह ।
नाभिनरिंदसुत समरतां, पातिक दूर पुलाह ॥१॥
शान्तिजिनेसर हुं नमुं, हथिणापुरनो राय ।
अचिरानन्दन सेवतां, दिन दिन दोलित थाय ॥२॥
स्यांमवरण तनु सोभतो, सुखसंपत दातार ।
पशूव पुकार सुणी करी, छांडी राजुल नार ॥३॥
अश्वसेन कुल चंदलो, वामादै मात मल्हार ।
कमठहठमदभांजनै, पाम्या भवजलपार ॥४॥
सिद्धारथसुत वीरजी, जयवंतो जिनचन्द ।
अष्ट करम दूरै करी, पांम्या परमानन्द ॥५॥
पंच तीरथ प्रणमुं सदा, पंचम गति दातार ।
सदगुरु पय प्रणमी करी, लिखुं लेख विस्तार ॥६॥

॥ अथाऽग्रे गुर्जरदेशवर्णनमाह ॥

॥ दूहा ॥

गुर्जर देश सुहावणो, बहु वाडी वन बाग ।
सजल सरोवर सुघड नर, करत सफल जन मा(भा)ग ॥१॥
तिण देसे सहिरां शिरै, राधणपुर सुखकार ।
इंद्रनगरनी ओपमा, वर्ण वसै तिहां च्यार ॥२॥
सुखीया लोक वसै सदा, धरमी नै धनवंत ।
लक्ष्मीधर व्यवहारीया, नांमै घणु यशवंत ॥३॥
पहिरण ऊढण अंबरै, जरकस नै जरबाब ।
तेल फुलेल अबीरमै, रहै सदा गरकाब ॥४॥
पचरंगी पाघां भली, तुररा बहु लटकंत ।
भ(ज)लहलै अति सूरज समा, देखी मन मोहंत ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपै रतिपति सारिखा, विकसित मुख कैलाश ।
नैणांमृत देखी सहू, करत सदा इकलास ॥६॥
स्त्रियादिक पिण सोभती, अपछरनै अनुमान ।
मृगनैणी बहु सरलता, देवै सुकृत दांन ॥७॥
जांझर चरणै झणकती, ठणणण बहु ठणकार ।
रिमझिम रिमझिम रमकती, गल मोतनको हार ॥८॥
नक वेसर शोभै घणुं, टीकीरो अति चाह ।
हावभाव बहु भक्तिस्युं, प्रणमै गुरुना पाय ॥९॥
राधणपुर रलीयांमणो, महियलमांहि दीपंत ।
जयन धरम जग जागतो, पूजै भविजन खंत ॥१०॥
देहरासर अति दीपता, वड धजा लहकंत ।
विविध नृत्य नाटिकतणुं, देखी मन हरखंत ॥११॥
झणणाटां झालरस्वरे, मादलना ध्रौकार ।
इणविध नगर सिरोमणी, दिन दिन हरख अपार ॥१२॥
नवविध नव अंगै रचै, नित नित नवले नेह ।
सदगुरु चरणनी सेवना, अहिनिस सारे सेव ॥१३॥

॥ अथ गुरुराज-अष्टोत्तरशतगुणवर्णनमाह ॥

॥ डोरी म्हांरी आवै रे रसीया रंग चवै । ए देशी ॥

एकविध असंयमना टालक सही, दुविध धरमना प्रकाश ।
म्हांरा गुरुजी ।
तीन तत्त्वना जांणक छौ तुम्है, च्यार कषाय विनास । म्हांरा०
भविजन वंदो एहवा गछपती ॥१॥
पंच महाव्रत पालक स्वामिजी, षटकायाना पीर । म्हारां०
सात भयांना आप निवार छौ, आठ मदा नावि धीर ।
म्हारा० भवि० ॥२॥
नवविध ब्रह्मचारजना धारवी, दशविध धर्म्म प्रकाश । म्हारा० ।
अंग इग्यारतणा जांणक वली, द्वादश अंग उपाश ।
म्हारा० भवि० ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयोदश काठीयाना जीपक छौ तुम्है, चवद विद्याना जांण । म्हांरा०
पंचदश भेदै सिद्ध प्रकाशक, सोल कला वदन सुजांण ।
म्हांरा० भवि० ॥४॥

सातदश पूजाना भेद प्रकासक, सहस अढार सीलंग । म्हांरा०
उगणवीस काउसगदोष निवारक, वीस तपथांन उपास ।
म्हांरा० भवि० ॥५॥

एकवीस गुण श्रावकना प्ररूपक, बावीस परीसह जीप । म्हांरा०
तेवीस अध्ययन सदा सुगडांगना, चोवीस जिनाज्ञा प्रदीप ।
म्हांरा० भवि० ॥६॥

पंचवीस भावनाना अतिभावक, छवीस दशाकल्प प्रपाल । म्हांरा०
सत्तावीस साधु गुणांना प्रकासक, अठावीस लक्ष दयाल ।
म्हांरा० भवि० ॥७॥

एगुणत्रीस पापसुरत-परसंगना, तीस महामोहनीथांन । म्हांरा०
वारक वर्जक छो गुरुजी तुम्हे, एकत्रीस गुणना विजांण ।
म्हांरा० भवि० ॥८॥

बत्रीस लक्षण करी पूज्यजी विराजता, तेत्रीस अशातना टाल । म्हांरा०
चोतीस अतिसयना पररूपक, पैत्रीस वांणीयै विशाल ।
म्हारा० भवि० ॥९॥

॥ दूहा ॥

छत्रीस सूरिगुणै करी, शोभंता गणराय ।
सैत्रीस देशना देसता, नित नित वंदु पाय ॥१॥
अठतीस उद्देसन कालना, उपदेशक गुरु जोर ।
गुणचालीस अढी द्वीपनै, विषयै ज्ञापक पोर ॥२॥
चालीस लाख भूतेंद्रना, भुवनउदेशक स्वाम ।
एकतालिस भेदै सही, शत्रुंजय गिरि नांम ॥३॥

॥ अंबरीयो कांई गाजै हो भटीयांणी रांणी वड चवै ए देशी ॥
दोष बैतालीस वरजै हो त्रैतालीस करम विपाकना ।
अध्ययन परूपणहार ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चमालीस लाख धरणेंद्रना हो भुवनांना ज्ञापक स्वामिजी ।
म्हांरा सदगुरु श्री गणराय ॥१॥
पैतालीस आगमसूत्रना हो उपदेशक स्वांमी छौ तुम्हे ।
छैतालीस लिपना जांण ।
सैतालीस जोयण हजारै हो सूरज मंडल परकाशक । म्हांरा० ॥२॥
अडतालीस सहस्रै हो वर पाटण चक्रवर्त्तिना ।
घण वंदण छौ गणराय ।
गुणपंचास दिनांना हो भिखु पडिमाना उपदेसक । म्हांरा० ॥३॥
पंचास धनुष सरीरे हो जिन अनंततणा उपदेसक ।
एकावन उद्देशन काल ।
बावन जिन परसादै हो उपदेशक श्री गणरायजी । म्हांरा० ॥४॥
त्रैपन साधु वीरना हो अनुत्तर पोहता तेहना ।
उपदेशक स्वामि सधीर ।
चोपन दिवसां नेमी हो उपदेशक छौ छदमस्थना । म्हांरा ॥५॥

॥ दूहा ॥

पंचावन अध्ययनना, वीरें रात्रें कीद्ध ।
तेह तणा पररूपक, छौ स्वांमी सुप्रसिद्ध ॥१॥
छपन नक्षतर अछै, जंबूद्वीप विचाल ।
ज्ञापक छौ गुरूजी तुम्है, सद वस्तै ततकाल ॥२॥
सत्तावन संवरतणा, उपदेशक गणराय ।
प्रकृत अठावन ज्ञांननी, उपदेशक मुनिराय ॥३॥
गुणसठ एकीक निशि, चंद्र संवच्छर जांण ।
साठ सहस लव्रणाब्धिनै, विषयै नाग वखांण ॥४॥
इगसठ छपन भागना, चंद्रमंडलना जांण ।
बासठ प्रतरा तणा तुम्है, जांणक छौ गुणखांण ॥५॥
त्रेसठ शलाका पुरुषना, जांणक छौ गच्छेश ।
चोसठ इंद्रनै वंदनीक, छो स्वामी सुविसेस ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पैसठ जंबूद्वीपनै, रविमंडलनां जांण ।
छासठ सहस्र श्रेयांशना, साधु चारित्र वखांण ॥७॥

॥ ढाल - निंदडली हो वैरण होय रही - ए देशी ॥

सतसठ साता कर्म्मना विध्वंसण हो म्हांरा गणराय क ।
अड़सठ कालप्रकासक स्वामीना हो नित नमतां पाय क ।
भविजन वंदो भावसुं ॥१॥

उगणोत्तर कर्म्मभेदना जांणक पररूपक छौ गुरुदेव क ।
सितर कोडाकोडनी मोहनीना हो टालक करुं सेव क ।
भवि० ॥२॥

एकोत्तर पूरव लाखथी गृहवासै हो वसीयाऽजितनाथ क ।
जांणक छौ तेहना तुम्है, बहोत्तर हो नरकला विमात क ।
भवि० ॥३॥

तिहुत्तर लाख बलदेवना, भुवनांना हो ज्ञापक स्वामी नाथ क ।
चिहुत्तर वरस अग्निभूतना गणधर आउखाना गुरु गाथ क ।
भवि० ॥४॥

पंचोत्तर सुबधितणा, केवल आउखाना उपदेशक ।
छिहोत्तर लाख विद्या(द्युत)तणा, भुवनांना ज्ञापक छौ गुरु पेशक ।
भवि० ॥५॥

सित्तोत्तर एकीकना, मुहुर्त्तै हो लवणना जांणक ।
अठंतर गणधर आयु, अकंपित हो नित प्रति वखांणक ।
भवि० ॥६॥

सहस उगण्यासी जोयण, गढ जंबूनें अंतरना जांणक ।
असी सहस ईशानना, देवलोकें हो सामान्य वखांणक ।
भवि० ॥७॥

सहस इक्यासी भिखुतणा, उपदेशक छो गिरूवा गणराय क ।
ब्यासी रात्र देवानंदने, कूखै रहीया हो महावीर जणाय क ।
भवि० ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्र्यासी गणधर शीतलनाथना, उपदेशक छो चउरासी लाख क ।
पूरव थित आदिनाथनी, पंच्यासी हो आचारंग शाख क ।
भवि० ॥९॥

छ्यासी सहस्र सुबुद्धीना, गणधरना हो स्वामी उपदेशक ।
सत्याशी कर्मप्रकृतिना, उत्तर परकरतीना सुविवेसक ।
भवि० ॥१०॥

अठ्यासी चंद्रपन्नत्तिना, सूरपन्नतीनै विषयै उपदेशक ।
निव्यासी सहस्र श्रीशांतिनी, साधवीना हो जांणक गुरुपेशक ।
भवि० ॥११॥

नेउ गणधर श्री अजितना, एकांणुं श्री कुंथुना ज्ञान क ।
जांणक बांणुं वरसना, गोतम गणधर आयुनो मांन क ।
भवि० ॥१२॥

त्र्यांणुं गणधर चंद्र प्रभूना, चोराणुं श्री अजितना ज्ञांन क ।
जांणक छो तेहना तुम्है, पंचाणुं गणधर पार्श्वना मांन क ।
भवि० ॥१३॥

छिन्नु कोड चक्रवर्त्तिना, पायकना हो जांणक गुरुराय क ।
सत्ताणुं कर्म्मप्रकृतिना, अठांणुं ऋषभना पुत्र वराय क ।
भवि० ॥१४॥

निवांणुं पूरव शत्रुंजयै, समवसरीया हो श्री आदिनाथ क ।
शततारक नक्षत्रना, पररूपक जांणक श्री सिद्धगाथ क ।
भवि० ॥१५॥

इकडोतर परीयां तणा, कुलदीपक जांणक छौ गुरुदेव क ।
बीडोत्तर बहु गुण करी, तीडोत्तर हो चीडोत्तर शाख क ।
भवि० ॥१६॥

पिचंडोत्तर भाषा तणा, छीडोत्तर हो कायाना रंग क ।
सत्तोतर माया वली, अष्टोत्तर हो जपमाला जापक ।
भवि० ॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि सकलगुणनिधांन, सकलक्रियासावधांन, सकलकलालंकृत, सकलजननलिनदिवाकर, सकलनरिंदपूजनीक, सकलसिद्धसिरोमणि, सकल-साधुनभोमणि, वादीमानमोडण, याचकजनदु:खदारिद्रतोडण, धर्म्मचक्रवर्त्ति, जैनधर्म्मउद्योतकारक, अहंकारीमानमर्द्दन, सर्व्वजगत्रवंदन, पापनिकरनिकंदन, राजामनरंजन, वादीभट्टनिकंदन, कर्म्मगजविखंडन, पापतिमरभंजन, श्रीजिन-शासनदीपक, बहुशास्त्रवादजीपक, वादीचक्रचूडामणि, राजतदिवसनिशामणि, वादीसिंहसार्दूल, वादीकंदउन्मूल, भूवलयचक्रचूडामणि, परमपूज्यपरमात्माप्ररूपक, परमधर्म्ममूर्त्ति, परमकृपाल, परमदयाल, याचकजनप्रतिपाल, परमपंडितशिराल, वाचालां वाचाल, नि:शेषनम्रीभूतनृपाल, श्रीजिनशासनपातिसाह, तपागच्छ-उद्योतकारक, कंदर्प्पोनमादमारक, धारकां धारक, सर्वसिद्धांतपारक, कर्म्मकल्पांण(त)कारक, श्रीश्रीविजय**धर्म्मसूरि**गुरुजितां पट्टधारक, गादीउच्छाहकारक, प्रभाविकां प्रभाविक, सर्व्वजगत्रदीपकसमांन, शत्रू मित्रजिम परमांन, षट्त्रिंसगुणै भ्राजमान, राजमांन, शोभमांन, दीपमान इत्यादि अनेकगुणालङ्कृतान्, श्रीजिनशासनचक्रवर्त्ति-समानान्, कलिकालगौतमावतारान्, सकलसूरिशिरोमणि(णी)न्, समुद्र जिम गंभीरान्, सिंह जिम निर्भया[न्], भारंड पंखी जिम अप्रमत्तान्, मेरु जिम गंभीरान्, सूर जिम तेजस्वीन्, चंद्र जिम सितलान्, सोलकलासंपूर्णवदनान्, सश्रीकान्, परमशोभावान्, सकलभट्टारकपुरंदर, सकलभट्टारिकसिरोमणि, भट्टारकभट्टारिकजी श्रीश्रीश्रीश्रीश्री १००८ श्रीश्रीश्रीश्रीविजय**जिनेंद्र**सूरीश्वरजिकानां चरणान् चरणकमलान् पत्रम् ।

धन्य ते **गुजरात** देश, धन्य ते **राधणपुर** नगर, धन्य ते श्रावक श्राविका, धन्य ते ग्रामनगरपुरपट्टणसंनिवेश, जिहां श्रीपूज्यजी विहार करै, चोमासो करै, धरती पवित्र करै, चरणोदक प्रसवै, धन्य ते **राधणपुर**नगरना श्रावक श्राविका ते नित्य प्रतै श्रीपूज्यजीना मुखनी अमृतमयी वांणी सांभलै, कांन पवित्र करै, पोसह पडिकमण व्रत पच्चखांण करै, श्री **तपागच्छ**मांहै दीपक समांन श्रीपूज्यजीना मुखनो परभातसमै दरसण करै, पूजा प्रभावना करै, धन्य ते श्रावक श्राविका पुण्यभंडार भरै - इत्यादिक श्रीपूज्यजीना गुणनी तारीफ हजारे गमै जीभ हे तो वर्णवै न सकै, मो मंद थकी किम वर्णवाय ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ **मरुधरदेशवर्णनमाह**-

॥ दूहा ॥

मरुधरदेश मोटुं अछै, सहू देशां सिरताज ।
अवरदेशां सिर सेहरो, पूरं वंछित काज ॥१॥
वागवगीचा अति घणा, सजल सरोवर सार ।
आंबा रायण अति भला, कोयलना टहूकार ॥२॥
मोर झिंगोरां दादुरां, बबईया बोलंत ।
अतर अबीर गुलालसुं, खेलै मास वसंत ॥३॥
वली इण देशै तिर्थ छै, **रांणपुरो** रिसहेस ।
कापरडै फलवधिपुरी, निरखी नयणां वेस ॥४॥
इणदेशै अधिपति भलो, **मानसिंघ** महाराज ।
अतितेजै सूरज समो, सारै सहूना काज ॥५॥
तेहनी आज्ञा छै इहां, वरतै हुकम प्रमांण ।
सकलनगर सिर मुकुटमणि, **जोधनगर** सुभ ठांण ॥६॥
कोड जुगै **प्रतपो** सदा, श्रीश्रीजी सुविहांण ।
पुर **जोधांण** पधारीयै, अरिज चढै परिमांण ॥७॥
इम अनेक गुण सोभतो, मोहतो जन मनरंग ।
धरामंडण ए नगर छै, चावो नगर सुचंग ॥८॥

अथ **योधपुर** गजलवर्णनमाह--

॥ दूहा ॥

सुंडाला तो समरतां, उपजै उकित अपार ।
गजल कहुं **जोधांण**की, सुणज्यौ सब संसार ॥१॥
नगर देश केई निपट, जगमै कैता जोय ।
जोधांणो देख्यौ जरै, होड न इणरी होय ॥२॥
गजल कहुं तिणरी गुणी, अपनी मति अनुसार ।
दीठो जीसडो दाखीयो, परतख गुण अणपार ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ कवित्त ॥

जगमालम **जोधांण**, सहर सारांही शिरहर ।
मानसिंघ माहाराज, राज जिहां करै राजेस्वर ।
वरण अढारह बसत, सुखी इंदलोक समानह ।
अनधन घरां अपार, कदै दुख वात न मुख कह ।
गज अस्व थाट जिहां बहु गुनी, नगर देख सुख उपजनित ।
कीरत्त गजल करि कै कहूं, नरवड चित दे सुनहु नित ॥१॥

॥ अथ गजल चाल ॥

योध ही नगर है जेसा क, मांनु इंद्रपुर ऐसा क ।
कहीयै सिफत तिन केती क, जिंदमै बुद्ध है जेती क ।
पढतां गुनह नावत पार, अपनी मत्तमै अनुसार ।
महीपति **मानसिंघ** जिहां राज, करहै सदा ध्रम ही काज ।
तेजै पुंज तरुण तपंत, जिनकी किर्त्त जग जपंत ।
निरखत दरस नित नरनार, वधज्यौ जोति इधकी वार ।
इनविध देत है आसीस, वानी वदत विस्वावीस ।
गढ जिहां अनड अति ऊंचा क, परगट आभ लग पोहचा क ।
देखत छिक रहै दइवांन, जगमै लंक गढ ही जांन ।
भुरजां वडवडी भारी क, सबही अडग है सारी क ।
नव नव हाथ तिन परनाल, वैरी देख होत वैहाल ।
तिनका नाम किल्लातोड, कैती तिहां लाखां कोड ।
जंबूरेखला जूजाल, शत्रू देख जानत साल ।
परगट सात प्रोढी पोल, रावत करत तिहां रंगरोल ।
महिल्ल अटल मनमांन्या क, जगमै वड नरां जांन्या क ।
गहरा फाब जाली गोख, जिहां नर बैठे करते जोख ।
उनमै शोभते उत्तंग, चामुंड देहरा है चंग ।
वली करुं सहिरका बखांन, कलि(वि)जन सुनत दे दे कान ।
बहु जिहां चोवडा बाजार, पंकत हाट पाव न पार ।
झुक रही हवेल्यां झाझी क, मांहै मनुक्ष है माझी क ।
कोरणी खब है केसी क. इलमै देख नही एसी क ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झिगमिग रहै जाली जोत, रवि जिम होत है उद्योत ।
जिणमै **पदमसरवर** जांण, वलही **रांणीसर** वाखांण ।
गहरा फाब ते गुल्लाब, **सागर फतै** अमृत आब ।
गंगेलाव फुलेलाव, चित्तमै देखवै का चाव ।
तापी वाव जैता कूप, रूडा नगरका है रूप ।
सरवर मान उदधि समांन, परगट नीर गंगा पांन ।
गंग ही स्यांम का देहराक, मानुं सहरका सेहराक ।
कुंजहविहारी परसाद, करते गगनसै अतिवाद ।
वडमहराजकी सुण वत्त, मंदिर करै प्रभु अनुरत्त ।
पासहि पावान का परगट्ट, थप्पै देहरा बहु थट्ट ।
जलंधरनाथ देहरा जुक्त, भेटत उपजै बहु भक्त ।
पूजत भूप **मानसिंघ** पाव, अष्ट ही सीद्ध नव नीध आव ।
तिनकी महिर मरूधरदेश, खलदल जात आपही षेश ।
नाथही कीध अचल नरिंद, इल गिर मेरु जब लग इंद ।
पढता मुखै तिनका पाठ, थिर रहै राज हागड थाट ।
वलि नृप ताहि बलवंका क, शत्रव मांनते संका क ।
पूज्यां सिद्ध इह फल पाय, तिनकै कुमी न रही काय ।
भगवंत देहरा भारीक, नमते सबही नरनारीक ।
तलहटी महिल मनमांन्या क, जगमै इंद्रलोक जाना क ।
कोटवाल चबुतरा कैसा क, जोवो देवलोक जेसा क ।
सायर ऐनका कोठार, भरीया द्रव्य बहु संभार ।
दर्शन देख **नाथद्वारा** क, भल लघु केई कै वृद्ध भा क ।
जो जो पासरै जेता क, कहोजी गिणै कुण केता क ।
परगट तिहां बहु पोसाल, बहु बहु जिहां पढते बाल ।
अस्थल भगतका एता क, दांन ही संतकुं देता क ।
मोटी वडवडी मैहजीत, पढते जवनि तिहां कर प्रीत ।
मोटा अडिग मनारा क, सबही देखता सारा क ।
तकीया फकीरांका फाब, क्या कहै आरबीका जाब ।
आसण मठ जिहां अनेक, योगी संयोगी है केक ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छिब चउ वर्ण पवन छत्तीस, वदहू नाम विस्वावीस ।
क्षत्री वणिक विप्र ही खास, वसते आपकै आवास ।
कायथ किते है के वास, देवीपूज प्रभू के दास ।
सोनी जाट छिंपा सूद्ध, करते काम अपनी बुद्ध ।
नाप कल्वार खाती नूर, अपनै कांममै भरपूर ।
डमगर सीसगर दरसावू, तेली तंबोली बहु चावू ।
भाखु कल्लालहीका भेद, खाटै द्रव्य न करै खेद ।
वलि तिहां अन्य बहु वसती क, इहां तो कहीये ऐती क ।
बणीया सेहर कोट बणाव, देखै दोयण न लगै डाव ।
अति विस्तार है उत्तंग, करते शत्रूको मनभंग ।
पाहड अनड पंचैट्या क, भुजबल भीमकुं भेट्या क ।
ज्वालामुखी देवी जोत, अहोनिस रहत है उद्योत ।
सहरबारकी सोभा क, अब कहूं सुनो नर दिल पाक ।
सीतल नीर **सागरसूर, सागरबखत** बहू जल पूर ।
बालही समदका वणाव, पंडित देख तिहां धर पाव ।
है तिहां महिल है मोटाक, लागै द्रव्य लख कोटा क ।
वणीया तिहां अद्भूत बाग, छोगा छयल घालत पाग ।
तिणमै अंब दाडिम दाख, तरवर विस्तरै बहु साख ।
पींपल वड ही बहु परचंड, तिनकै बहुत है वनझुंड ।
मेला मंडत है मोटा क, नांणा चलत नही खोटा क ।
इक है राई का आराम, देखत सरत सब ही काम ।
रुडा देख **रतन[त]डाक**, खग तिहां रहत है खडा क ।
जालिम देवता राजे क, गणपति नाम ही गाजे क ।
सेखावत्त सरवर सार, पांणी भरै है अणपार ।
अखयसागर अखैराज, सिंघवी करायो सिरताज ।
कागावागकी कीरत्त, सहू नर कहै सुणज्यौ सत्त ।
उसमै चीज है चित चाह, लायक नरह लै जू लाह ।
मंडोवरह अतिमोटे क, कायम सहर नव कोटे क ।
बाजै पवन छत्तीसे क, दर्शन खट तिहां दीसे क ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वड वड बागका विस्तार, इधकै फूल फल अणपार ।
कहीयै देव तेतीस कोड, ठावा लाभ ते इकठोड ।
देवल बहुत भी देख्या क, परगट कोट गढ पेख्या क ।
भैरूं जिहां है भारी क, पूजन पाव नरनारी क ।
पारसनाथकै परसाद, झलर नगारूंकै नाद ।
श्रावक अवर नर सोभा क, लायक सुनो तज लोभा क ।
सरवर **बहुजी**का शुद्ध, देख्या नीर जांणै दुद्ध ।
सिंघवी भंडारी मुंहणोत, मुंहता खीवसरा भलजोत ।
सांडज सांखला मणिमाल, गोघड गोलीया भंडसाल ।
डोसी सरस फोफलीयाक, संचीती खांप रूवटीआक ।
नाहर गोत सुरांणाक, पटवा सुंदरु वरणाक ।
भुरट हुंजांण श्रीश्रीमाल, धरते धरमकी चित चाल ।
आहोर वसत अखैचंद, लायक धर्म्म लहरी समंद ।
मांनत भूप वडही भाग, अपनै देवगुरु अनुराग ।
फबते फूटरै **रिधकरण**, मनहर मुंहते **मालकरण** ।
मुंहता गोत है भंडसाल, **वनजी चोधरी** उजमाल ।
देहरै पासरै बहु खास, करते सराप **किसनदास** ।
सबही नगरका वरणाव, गुणीयण कह्या गुरु सुपसाव ।
संवत अढार इगसठ आंण, वदीया मास आसु वखांण ।
पडिवा सुकल परव ही पेख, **मनरूप** कही लग नही मेख ॥१॥

॥ ढाल बिंदलीनी ॥

प्रणमुं सरसती पाया, गुण गावुं गच्छपति राया हो ।
सदगुरु अरज सुणो ।
अरज अम्हारी अवधारो, तो **जोधांणै** नगर पधारो हो ।
सद० अरज० ॥१॥
मरुधर देश छै मोटो, जठै अनधनरो न ही तोटो हो । सद० ।
जठै नगर **जोधांणो** राजै, ओतो अलिकापुरी सम छाजै हो ।
सद० अरज० ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूपति **मानसिंघ** राजा, वाजै नित नौबत वाजा हो । सद० ।
हय गय रथ परीवार, पायक दल संख न पार हो ।
सद० अरज० ॥३॥
गढपती गढमै गाजै, अरीयण तेहना सहु भाजै हो । सद० ।
शत खंडै महिल विराजै, जिम आसाढै घन गाजै हो ।
सद० अरज० ॥४॥
चांपा कूंपा मेडतीया, उदावत छै बहुमतीया हो । सद० ।
जोधा जैतावत जांणुं, करमसोत करणोत वखांणुं हो ।
सद० अरज० ॥५॥
आठै मिसलत छाजै, भूपति तिहां तखत विराजै हो । सद० ।
मुच्छद्धी तेहना भारी, दीवांण छै सिंघवी भंडारी हो ।
सद० अरज० ॥६॥
मुंहणोत नै वली मुंहता, हाकम हुजदारी करता हो । सद० ।
इम नगर **जोधांणो** तुम्है निरखो, जिको इंद्रपुरी छै सरिखो हो ।
सद० अरज० ॥७॥
वाग वाडी आराम, नव खंड मांहै जिणरो नांम हो । सद० ।
मुंहणोत **नवलमल्ल** भाखुं, **जोधपुर**नो हाकम दाखुं हो ।
सद० अरज० ॥८॥
चतुर सुघड बहु जांण, राजानो छै बहु मांन हो । सद० ।
भगवंत देहरा भारी, पूजा हुवै सतरप्रकारी हो ।
सद० अरज० ॥९॥
श्रावक बारै व्रत साजै, गुणनिध नितनितका गाजै हो । सद० ।
पोसा नै प्रतिक्रमण, वली भेद सिद्धांतां भणणा हो ।
सद० अरज० ॥१०॥
सुगुरुतणी करै सेवा, पूजै इक अरिहंत देवा हो । सद० ।
ज्यांरा गुण मुख कैता, गावुं, परतिख नही पार न पावुं हो ।
सद० अरज० ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिकै दरसण देखण तोरा, मेह आगम चाहै मोरा हो । सद० ।
कृपा त्यांहीपर कीज्यौ, देशना ध्रमरी तुम्है दीज्यो हो ।
सद० अरज० ॥१२॥
धर्म्मसूरीना पटधारी, आ वीनती सुणज्यौ सारी हो । सद० ।
विजयजिनेंद्र गछराया, प्रतपो गुरु तेज सवाया हो ।
सद० अरज० ॥१३॥
खुस्यालविजय गुरुराया, तेहना **पद्मविजय** मन भाया हो । सद० ।
चरणकमल सुपसावै, शिक्ष **मनरूपविजय** गुण गावै हो ।
सद० अरज० ॥१४॥

॥ दूहा ॥

पृथवीपट कागद करूं, लेखण करूं वनराय ।
सायर सगला मिसी करूं, तुम्ह गुण लिख्या न जाय ॥१॥
किहां कोइल किहां अंबवन, किहां चातिक किहां मेह ।
विसार्या नवी वीसरै, गुरुजीतणा सनेह ॥२॥
अम हीयडो दाडिमकुली, भरीयो तुम्ह गुणेण ।
अवगुण एक न संभरै, वीसारीजै जेण ॥३॥
दोय नारी अति सांवली, पांणीमांह वसंत ।
ते तुम्ह दरसण देखवा, अलजो अतिह करंत ॥४॥
मीठा भोजन पिण वयण, सदगुरुसुं वली प्रीत ।
वीसार्या नवी वीसरै, खिण खिण आवै चीत ॥५॥

॥ अथाग्रे श्रीमद्गुरुराजाष्टकं लिख्यते ॥

सुसिद्धविद्यौघविभूषिताङ्गं, स्वकीयसद्वाक्कलया ललामम् ।
मनोज्ञशास्त्रज्ञजनैश्च पूज्यं, जिनेन्द्रसूरिं सुगुरुं नमामि ॥१॥
श्रद्धालुवृन्दार्चितपादयुग्मं, हृद्यार्थवित्पण्डितगीतकीर्तिम् ।
सर्वज्ञपूजाविधिसन्मनीषं, जिनेन्द्रसूरिं सुगुरुं नमामि ॥२॥
सद्वाग्विलासं भविकप्रकाशं, विद्यानिवासं विलसन्मुनीशम् ।
तपोगणेशं कृतकर्मनाशं, जिनेन्द्रसूरिं सुगुरुं नमामि ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सतां शरण्यं विदुषां वरेण्यं, जिनार्च्चपण्यं मुदगण्यपुण्यम् ।
धन्यं गुणीनां सुधियां प्रवर्ण्यं, जिनेन्द्रसूरिं सुगुरुं नमामि ॥४॥
सौन्दर्यधैर्य्यादिगुणौघयुक्तं, नैर्मल्यविद्यामृतपानरक्तम् ।
कन्दर्पदर्प्पेभहरप्रशक्तं, जिनेन्द्रसूरिं सुगुरुं नमामि ॥५॥
सनातरां साधुशतोपसेव्यं, गीतार्थविद्वज्जनकोटिभव्यम् ।
सम्पूर्णपुण्योदयजातलव्यं, जिनेन्द्रसूरिं सुगुरुं नमामि ॥६॥
विशुद्धचेष्टं विदुषां वरिष्ठं, जिनेश्वरेष्टं धिषणागरिष्ठम् ।
स्वकीयधर्मेश्वरभक्तिपुष्टं, जिनेन्द्रसूरिं सुगुरुं नमामि ॥७॥
तपोनिधानं गुरुमतप्रधानं, शुद्धक्रियापालनसावधानम् ।
रम्याविधानं जनतासमानं, जिनेन्द्रसूरिं सुगुरुं नमामि ॥८॥
सूरीश्वराणां सुजनेश्वराणां, वराष्टकं यः पठनं करोति ।
तदीयपाठात् करणात् सुखव्रजं (?) भवेदजस्रं वरदं नराणाम् ॥९॥

अथ हिरणी ॥

नयनरसमातङ्गानन्तामिते वरवत्सरे (१८६२),
लसदि सहमासे पञ्चम्यां तिथौ शितपक्षके ।
भवति सुभटद्रङ्गेऽकार्षीत् **मनोहरसद्गणि(णी)**,
स्तवनमतिमेधायुक्तानां सतां पठनकृते ॥१०॥

इति **श्रीविजयजिनेन्द्र**सूरीश्वराणां गुरूणामष्टकं ज्ञेयम् ।

॥ अथाग्रे राधणपुरनगरवर्णनमाह ॥

॥ गजल ॥

सारद माद गणपति देव, गुरुपद पूजीयै नितमेव ।
सबही देसमै सुख ठोड, गुर्जर मुलक सब सिरमोड ।
सुंदर सजल सोहै धांम, जिसमै नगर है अभिराम ।
एकहु एकथी आछेक, पुरवर सोभते साचेक ।
रिधसुं भयौं **राधणपूर**, जिनवरभक्ति उगत सूर ।
श्रावक सेठजी रहते क, गुरुजन भावमै वहते क ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनवर मांनता शुभ ध्यांन, सतरै देहरै गिण ग्यांन ।
फबते फूटरै बाजार, हाटां सोभते हजार ।
तिसमै बैठते बहु साह, करते विणज मन उछाह ।
मुखमल मैहमुदी मजूब, खासै बासते बहु खूब ।
थिरमे पांभडी पटकूल, देख्यां होत मन मुखतूल ।
रेसमी सूतरु अतिचंग, कपडे बेचते मनरंग ।
केसर वासते कच्चूर, महिकै स्यांम ही किस्तूर ।
हिमरु ताफताके थांन, विकते नवनवे कपडान ।
जरकस वादले भी जोय, गोटा तार कोरां कोय ।
हूंडी लिखत हूंडीवाल, मेलत द्वीपकुं के माल ।
रुपीया मोहरां व्यापार, वाणिज रोकडा व्योहार ।
तिन विच राजकै कमठांन, सायर चौतरै सुभ जांन ।
राजा राजते निब्बाब, करते न्यायके जब्बाब ।
हयवर हींसते हणणाट, गयवर गाजते गणणाट ।
थंभे गगन के दलथाट, वहते पंथ निरभय वाट ।
अदल नीत है ऐसीक, त्रैता युग्ग की तैसीक ।
तिनका सोभते अतिमहल, तिसमै करत है बहु सहल ।
तिनकै निकट है **रंगवाग**, दाडिम करमदा फल लाग ।
केवड केतकी करणा क, नींबू पीलरै वरणा क ।
गहरै जलभरै दरीया क, तिण पर हंस बग खरीया क ।
इण पर सोभते ससी नूर, वसती बहूत है भरपूर ।
करते राजहु जिण थांन, फरजन पूंगडाकी खांन ।
ऊंची हवेल्यां अनहद्द, पेखज उपजै मनमद्द ।
आलय अवल ही कमठांण, दोनुं निकटवर्त्ती जांण ।
विजै देवसूरिजी परमाण, सागर सूरीया पहचांण ।
आलय ओपतो सुध मान, गच्छपति राजते राजान ।
तपगछ पाटनायक देख, मनसुख उपजै संपेख ।
जिनइन्द सूरिजी है नाम, गादी वीरकी अभिराम ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छाजत ग्यांन गुन छत्तीस, वांणी धार गुण पैतीस ।
साधु सेवते नित पाय, मनसुध गावते गणराय ।
पुरमै वरण वसते च्यार, धरते सदा गुरुसुं प्यार ।
करता राजका नित काम, कायम **कुलंबी रिदैराम** ।
चित सुध भक्त है जिनदेव, सारै सदा मनसुध सेव ।
गोडीरायजीको दास, परचो पूरवै नित आस ।
इहविध सांभलो सब कोय, जगमै जागतो जिन जोय ।
इतनी गजल मै गाईक, कवीजन सुनत मन भाईक ॥१॥

॥ अथ छप्पय ॥

अकलवान गुनवांन । जांन जसवांन दांन हित ।
मांन मुदै निज स्वांम । कांम सब धांम प्रदापित ।
सकल काज सिद्ध साज । राज नित नीत चलावत ।
पावत धर्म्म प्रबोध । सोध साधु मन भावत ।
इह प्रगट **कलंबी** वंसमै । **रिदयराम** साहिब सखी ।
गाजल्दिखांन निब्बाबकै । कांमदार रहिज्यौ अखी ॥१॥

सं १८६२ वर्षे मृगशुदि ५

॥ श्री परमैश्वरजी जीते छे ॥

स्वस्त श्रीराधणपुर सुथाने सरबओपमा विराजमांन अनेकगुणनीधांन एकवीध असंजमना टालीक दुवीध धरमना परकासक तीन ततवना जांण च्यार कषाय निवारक पांच माहाव्रत पालक खटकायना पालक सात भेय नीवारक आठ मद जीपक नव वाड ब्रीमचारजना धारक दसवीध जती धरमना धारक इतादि छतीस गुणे करी वीराजमांन अनेकओपमालायक सकलभटारक-पुरांदर सकलभटारकसीरोमणी भटारकजी श्रीश्री १०८ श्रीश्रीश्रीश्रीविजै**जीनांद्र** सुरीसरजी च्रणकमलावनु श्री**जौधपुर**थी तपगच्छरा सांमसत सीघ लीखावतां वनणा ऐकसो १०८ सदेव तीरकाल अवधारसी । अगरा सांमाचार श्रीजी सायबोरी कीरपा कर भला छौ श्री गुरुदैव छो मोटा छौ सदा सीघ उपरे सुभ नीजर धरमसनेह राखो छो तीणथी वीसेष रखावसी जी । श्रीश्रीश्रीसायबोरी दरसणह श्रीचरणकंवल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेटसो सु दीन सफल हुसी । अपरच हमके चोमासे पांनासी **मनरुपवीजै**जी **गुमांनवीजै**जीनै राखा सौ बोहत लायक जोग्य गीतारत छै, **जोधपुर** लायक छै, परभाते वखांण पाटीये **गीनातासुतर** वचीजे छे, रातरे वखांण **पारसनाथ चीरतर** वचीजे छै, सारो मरजाद ववहार धरमरो अवल छै. पजुसण भला ठाट उजीवा छै, चेतप्रवाळ कातीपुनमरौ श्रीजीनराजरौ ऊछव श्रीदरबारसु भला ठाट उजीवो छै, ईसा चोमासी रहयो गछरी मोकली सोभा छै सो आगाउ पीण हमकै बेठाबेठ चोमासौ इणानुईज लीखावसी । ने श्रीसीघरौ दुसालो १ नारजीरंगरो मेलीयो छै परभांणी **बखतवीजै**जी हसतै मेलीयो छै सो सभाल लेसी। पाछो स्माचार श्रीसीघने लीखावसी। आहा वीनती सीघ समसत लीखी छै रोजी हुयनै सो हमकै बेठाबेठ चंमासो **मनरुपविजै**जीनुईज लीखावसी, घणो कोई लीखणमै आवै थोडो लीखीयौ घणो जांणसी । तथा गुरां बखतविजेजी गंछनीमतं मोकली मंमतं राखे छै सो ईसा जती हुवै जीणानु तो घणी दीलासा देणी, एह घणे कांमरा छै, पछै तो आप मोटा हौ सरब जांण छो, पीण गछनी मत ईसी जती तो थोडा हुसी, पछै तो आपरी मरजीमे आवै सो खरी, सीघ तो दैखे जीसी लीखणमे आवे, केरणो करावणो तो आप सारै छे। को जु मीनख गीतारंत हुवै जीणारीतो आपनुइ कीमतं राखी चंई, जै आपतो वडा छौ ने श्रीवीरजीरी गादी वीराजीया छो, घणा आदरीयांनुं केवटो छौ सो आपनुं अरज कठे केताइ लीखा, सीघरो तो लीखणरो जोर छे, पे छै मरजी तो आपरी हुवै सो खरी, आपतो सरब जांण छो सारोईनु केवटणा तथा आतसीणरा चांमासी हंरखं अठै आया था सो सीघ आगै केही ठांणा ता १६ ने श्रीजी तो खेतर ठांणा ५रो लीखीयो सो सीरीजी लीखीयो तीण माफक गुदरांन कीनौ, सो आगाले ठाणा माफक खेतर दीरावसी रोटी तो साराई चावै ईतरी आपनु वीचारी चंहीजै आप सरब जांण छो, अग लायक कांमकाज हुवै सो लीखावसी। सीवत १८६२ रा फागुण वद १३ ॥

॥ अथाऽग्रे विज्ञप्तिसाज्झाय लिख्यते ॥

॥ गुरु पाटीयै पधारो - ए देशी ॥

हुं तो सरसती प्रणमुं पाया, ए तो गावुं गछपती राया,
गुरु दिन दिन तेज सवाया,
मनोहर वीनती अवधारो, गुरु मरुधर देश पधारो ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु ग्यांनादिक गुण भरीयो, दीसै समतागुणनो दरीयो,
उपम गोतम अवतरीयो, मनो० ॥२॥
दीपै **हरचंद** कुल हीरो, वलै मात **गुमांनदे** जीरो,
जिण जननी जायो सुधीरो, मनो० ॥३॥
स्युं **राधणपुर** रह्या मोही, पवधारो **जोधांणे** ससोही,
गुरु कांई थया निरमोही, मनो० ॥४॥
गुरु दीपै दिनमणीयाली, जिण कुमति लता जड गाली,
गुरु प्रतपो कोड दीवाली, मनो० ॥५॥
गुरु पांचे सुमते सुमता, गुरु तीने गुपते गुपता,
वली छत्रीस गुणे करी खमता, मनो० ॥६॥
गुरु पंच महाव्रत धारी, गुरु महीयल बहु यशभारी,
गुरु इंद्र तणो अवतारी, मनो० ॥७॥
एक वीनती शत सम गिनज्यौ, श्रीसंघनी निज त्रैवड ज्यौ,
गुरु वहिली वलण करेज्यौ, मनो० ॥८॥
गुरु आयां सोभा घणैरी, एह वात छै जांणो अनेरी,
गुरु श्रावक मदत भलेरी, मनो० ॥९॥
गुर्जरधरलोक ठगारा, तिण मोह्या गुरुजी हमारा,
पिण **मरुधरा** कांमणगारा, मनो० ॥१०॥
मुख स्युं स्युं बोल ज बोलै, कपटी जन कपट न खोलै,
वली भोलडा जनने भोलै, मनो० ॥११॥
गुरु **खुस्यालविजय** सुपसावै, कवि **पद्मविजय** मन भावै,
शिक्ष **मनोरविजय** गुण गावै मनो० ॥१२॥

॥ दूहा ॥

रामविजय अतिरंगसुं, करै भंडारनो काम ।
विनय विचक्षण सुंदरा, **विद्याविजय**नै प्रणाम ॥१॥
दांनविजय दाता गुणै, मणिधर मोटो वजीर ।
दूजा **रामविजय** नमुं, जिम मूंद्रडी नग हीर ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फतैविजय भल फाबता, माणिक्य मोतीनी माल ।
जीतसागर जसउजलो, मोहन वचन रसाल ।।३।।
दोलत दोलत देयणो, इत्यादिक परिवार ।
त्रिविध त्रिविध कर मांनज्यो, वंदना वार हजार ।।४।।

अत्रत्य । **पं. मनरूपविजय ग. । पं. गुमानविजय ग. ।**
पं. चंद्रविजय ग. । राजेंद्रविजय ग. । धनविजय ग. ।
जीतविजय ग. । कपूरचंद । मगनीराम । पनालाल ।
माणिक्यचंद प्रमुखनी वंदना १०८ नित्यमेव अवधारसी ।

।। इच्छाकारेण संदेसह भगवन् पखीयं चोमासीयं संवच्छरीयं राइयं देवसीयं पांचे खामणै करी खामुं, इच्छ खामेमि जंकिंचीयं अपत्तियं परपत्तियं भत्ते पाणे विनये वेयावच्चे आलावे सलावे उच्चासणे समासणे अंतरिभासाए उवरिभासाए जं किंचि मज्झ परिहीणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणह अहं न याणामि तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।।१।। श्रेयम् ।

।।श्रीः।। ।।श्रीः।। ।।श्रीः।।

शब्दकोश

पृष्ठ	पङ्क्ति	शब्द	अर्थ
६९	७	पुलाह	पलाय
६९	९	दोलित	दोलत
६९	२२	सहिरां शिरै	शहेरोमां श्रेष्ठ
६९	२८	तुररा	?
७०	२	इकलास	एखलास
७०	६	गल	गलुं
७०	७	नक वेसर	नाकनुं लटकणियुं
७०	१०	जयन धरम	जैनधर्म
७०	१३	मादल	मृदंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१	८	सुगडांग	सूत्रकृतांग (जैनआगम)
७१	१३	पापसुरत	पापश्रुत
७१	२३	पोर	?
७२	१९	सद	सदा
७२	१९	वस्तै	वस्तुतः (?)
७३	१०	विमात	?
७४	४	सुबुद्धि	?
७४	५	परकरती	प्रकृति
७४	१६	पायक	सैनिक
७४	२२	परीयां	पेढीओ
७६	४	सेहरो	शेखर (मुकुट)
७६	१०	वेस	?
७६	२१	सुंडाला	गणपति
७६	२१	उकित	उक्ति
७६	२३	निपट	घणा
७७	२	जगमालम	जगतमां आनन्दी (?)
७७	५	अनधन	अन्न अने धन
७७	६	थाट	समुदाय
७७	१०	सिफत	प्रशंसा
७७	१०	जिंद	?
७७	१२	ध्रम	धर्म
७७	१६	अनड	अनम्र
७७	१७	छिक रहै	छक थई जाय छे
७७	१७	दइवांन	देवो(?)
७७	१८	भुरजां	बुरज
७७	१९	परनाल	प्रणाली (खाई)
७७	१९	बैहाल	बेहाल
७७	२०	कैती	छरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७	२१	जंबूरेखला	?
७७	२१	जूजाल	योद्धो
७७	२१	साल	शल्य
७७	२२	पोल	दरवाजा
७७	२४	फाब	?
७७	२४	जोख	आनन्द
७७	२७	चोवडा	चौटा
७७	२७	पंकत	पंक्ति
७७	२८	माझी	अन्दर (?)
७७	२९	इल	इला (पृथ्वी)
७८	३	फाबते	शोभे छे (?)
७८	४	चाव	चाह
७८	९	वत्त	वार्ता
७८	१०	पावान	?
७८	१०	थप्पै	स्थापे
७८	५	हागड	झाटक(दुकान) (?)
७८	६	बलवंका	साहसिक
७८	७	कुमी	कमी (ओछप)
७८	२२	भल	भला(?)
७८	२२	भाक	?
७८	३	पासरै	?
७८	४	पोसाल	पाठशाला
७८	५	अस्थल	स्थल
७८	६	मैहजीत	मस्जीद
७८	६	जवनि	यवन(मुसलमान)
७८	८	जाब	जासो
७९	१	छिब	छे (?)
७९	१	पवन	प्रवर्ण(उपजाति) (?)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७९	३	कायथ	कायस्थ
७९	३	देवीपूज	पूजारी(?)/वाघरी (?)
७९	५	नाप	हजाम
७९	५	कल्वार	?
७९	५	खाती	कठियारा (?)
७९	६	डमगर	डबगर
७९	६	सीसगर	सीसुं बनावनार
७९	९	दोयण	?
७९	९	डाव	?
७९	११	पाहड	?
७९	११	पंचैट्या	?
८०	२	इकठोड	एकस्थाने
८०	६	जठै	ज्यां
८१	१०	मिसलत	दरबार (?)
८१	१०	तखत	सिंहासन
८१	११	मुच्छद्धी	मुत्सद्दी
८१	३	हाकम	हाकेम
८१	३	हुजदारी	फोजदारी (?)
८१	२६	परतिख	प्रत्यक्ष
८२	२	ध्रमरी	धर्मनी
८२	१८	अलजो	अभिलाष
८३	२१	सारद माद	सरस्वती माता
८३	२५	रिध	ऋद्धि
८४	२	फबते फूटरै	शोभाथी फूटडा (?)
८४	४	मजूब	कापडनी जात
८४	५	मुखतूल	खुश (?)
८४	८	हिमरु	?
८४	८	ताफता	कापडनी जात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८४	१२	कमठांन	मंच
८४	१५	दलथाट	वादळो
८४	२०	खरीया	खडा (?)
८४	२२	फरजन	फरजंद (?)
८४	२२	पूंगडा	?
८५	१८	सुथाने	स्थाने
८५	२१	ब्रीमचारज	ब्रह्मचर्य
८५	२४	सांमसत	समस्त
८५	२५	सीघ	संघ
८५	२५	वनणा	वन्दना
८६	१	पांनासी	पंन्यास
८६	३	गीनातासुतर	ज्ञातासूत्र (जैन आगम)
८६	४	चींरतर	चरित्र
८६	५	चेतप्रवाळ	चैत्यपरिपाटी
८६	७	नारजीरंगरो	नारंगी रंगनो
८६	८	परभांणी	बारोबार (?)
८६	१७	आदरीयानुं केवटो	दरियाने पार पमाडनारा (?)
८७	७	दिनमणीयाली	सूर्यनी जेम
८७	१४	वलण	पाछां वळवुं
८७	२७	मूंद्रडी	मुद्रा (वींटी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री पद्मानन्दसूरि रचित

श्रावक-विधि रास

म. विनयसागर

इस रचना के अनुसार 'श्रावक विधि रास' के प्रणेता श्री गुणाकरसूरि शिष्य पद्मानन्दसूरि हैं। इसकी रचना उन्होंने विक्रम संवत् १३७१ में की है। इस तथ्य के अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में इस कृति में कुछ भी प्राप्त नहीं है और जिनरत्नकोष, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास और जैन गुर्जर कविओं में कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। अतएव यह निर्णय कर पाना असम्भव है कि ये कौन से गच्छ के थे और इनकी परम्परा क्या थी ?

शब्दावली को देखते हुए इस रास की भाषा पूर्णतः अपभ्रंश है प्रत्येक शब्द और क्रियापद अपभ्रंश से प्रभावित है। पद्य ८, २१, ३६, ४३ में प्रथम भाषा, द्वितीय भाषा, तृतीय भाषा, चतुर्थ भाषा का उल्लेख है। **भाषा** शब्द अपभ्रंश भाषा का द्योतक है और पद्य के अन्त में **घात** शब्द दिया है जो वस्तुतः **'घत्ता'** है। अपभ्रंश प्रणाली में **घत्ता** ही लिखा जाता है। वास्तव यह **घत्ता वस्तुछन्द** का ही भेद है।

इस रास में श्रावक के बारह व्रतों का निरूपण है। प्रारम्भ में श्रावक चार घड़ी रात रहने पर उठकर नवकार मन्त्र गिनता है, अपनी शय्या छोड़ता है और सीधा घर अथवा पोशाल में जाता है जहाँ सामायिक, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करता है। प्रत्याख्यान के साथ श्रावक के चौदह नियमों का चिन्तवन करता है। उसके पश्चात् साफ धोती पहनकर घर अथवा देवालय में जाता है और सुगन्धित वस्तुओं से मन्दिर को मघमघायमान करता है। अक्षत, फूल, दीपक, नैवेद्य चढ़ाता है अर्थात् अष्टप्रकारी पूजा करता है। भाव स्तवना करके दशविध श्रमण-धर्म-पालक सद्गुरु के पास जाता है। गुरुवन्दन करता है। धर्मोपदेश सुनता है, जीवदया का पालन करता है। झूठ नहीं बोलता है। कलंक नहीं लगाता है। दूसरे के धन का हरण नहीं करता है। अपनी पत्नी से सन्तोष धारण करता है और अन्य नारियों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माँ-बहिन समझता है और परिग्रह परिमाण का धारण करता है। दान, शील, तप, भावना की देशना सुनता है और गुरुवन्दन कर घर आता है। वस्त्र को उतारकर अपने व्यापार वाणिज्य में लगता है। व्यापार करते हुए पन्द्रह कर्मादानों का निषेध करता है। प्रत्येक कर्मादान का विस्तृत वर्णन है। (पद्य १ से ३४)

व्यापार में जो लाभ होता है उसके चार हिस्से करने चाहिए। पहला हिस्सा सुरक्षित रखे, द्वितीय हिस्सा व्यापार में लगाये, तृतीय हिस्सा धर्म कार्य में लगाये और चौथा द्विपद, चतुष्पद के पोषण में लगाया जाए। (पद्य ३५)

द्वितीय व्रत के अतिचारों का उल्लेख करके देवद्रव्य, गुरुद्रव्य का भक्षण न करे। मुनिराजों को शुद्ध आहार प्रदान करे। इसके पश्चात् द्वितीय बार भगवान की पूजा करे। दीन-हीन इत्यादि की संभाल करे। मुनिराजों को अपने हाथ से गोचरी प्रदान करे। पौषधव्रत धारण करे। प्रत्याख्यान करे। सचित्त का त्याग करे। पिछले प्रहर में पुनः पौषधशाला जावे और वहाँ पढ़े, गुणे, विचार करे, श्रवण करे। सन्ध्याकालीन तृतीय पूजा करे। दिंन के आठवें भाग में भोजन करे। दो घड़ी शेष रहते हुए दैवसिक प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करे और रात्रि के द्वितीय प्रहर के प्रारम्भ में नवकार गिनकर चतुर्विध शरण स्वीकार करता हुआ शयन करे। (पद्य ३६ से ४२)

निद्राधीन होने के पूर्व यह विचार करे कि शत्रुंजय और गिरनार तीर्थ पर तीर्थ की यात्रा के लिए जाऊँगा, वहाँ पूजा करूँगा, करवाऊँगा। साधर्मिक बन्धुओं का पोषण करूँगा। पुस्तक लिखवाऊँगा और अपना व्यापार पूर्ण कर अन्त में संयम ग्रहण करूँगा। वृद्ध और ग्लानों की सेवा करूँगा॥ (पद्य ४३ से ४४)

जल बिना छाने हुए ग्रहण नहीं करूँगा। मीठा जल खारे जल में नहीं मिलाऊँगा। दूध, दही इत्यादि ढंककर रखूँगा। रांधना, पीसना और दलना इत्यादि कार्यों में शोधपूर्वक कार्य करूँगा। चूल्हा, ईंधन इत्यादि का यतनापूर्वक उपयोग करूँगा। अष्टमी चौदस का पालन करूँगा। जीवदया का पालन करूँगा। जिनवचनों का पालन करूँगा। यतनापूर्वक जीवन का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार करूँगा । जो इस प्रकार करते हैं वे नर-नारी संसार से पार होते हैं । (पद्य ४५ से ४७)

पाक्षिक, चातुर्मासिक और संवत्सरी के दिन क्षमायाचना करूँगा । सुगुरु के पास में आलोयणा ग्रहण करूँगा । अन्त में पर्यन्ताराधना स्वीकार करूँगा । कवि कहता है कि इस प्रकार श्रावक विधि के अनुसार दिनचर्या का जो पालन करता है वह आठ भावों में मोक्ष सुख को प्राप्त करता है । यह रास **पद्मानन्दसूरि ने संवत् १३७१** में बनाया है । (पद्य ४८ से ४९)

जो इस रास को पढ़ेगा, सुनेगा, चिन्तन करेगा उसका शासनदेव सहयोग करेंगे । जब तक शशि, सूर्य, पृथ्वी, मेरु, नन्दनवन, विद्यमान हैं तब तक यह जिनशासन जय को प्राप्त हो । (पद्य ५०)

इस प्रकार इस रास में श्रावक की दिनचर्या किस प्रकार की होनी चाहिए उसका सविस्तर वर्णन किया गया है । यह वर्णन केवल बारह व्रतों का वर्णन ही नहीं है अपितु उसकी विधि के अनुसार आचरण करने का विधान है ।

जैसलमेर भण्डार के ग्रन्थ से प्रतिलिपि की गई है । यह कृति प्राचीनतम और रमणीय होने से यहाँ दी जा रही है :-

श्रावक-विधि रास

पायपउम पणमेवि, चउवीसहं तित्थंकरहं ।
श्रावकविधि संखेवि, भणइ **गुणाकरसूरि** गुरो ॥१॥
जहिं जिणमंदिर सार, अंतु तपोधनु पावियइं ।
श्रावग जिन सुविचारु, धणु तृणु जलु प्रचलो ॥२॥
न्यायवंत जहिं राउ, जण धण धन्नरउ माउलउ ।
सुधी परि ववसाउ, सूधइ थानकि तहिं वसउ ॥३॥
तम्मिहिं इहु परलोय, करमिहि इहलोउ पुणु ।
तह नर आउ न होउ, जसु तहं रवि ऊगमइ ॥४॥
तउ धम्मिउं उट्ठेइ, निसि चउघडियइ पाछिलए ।
जिणि नवकारु पढेइ, पहिलउ मंगलु मंगलहं ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक्खणि मेल्हवि खाट कवणु देवु अम्ह कवणु गुरो ।
अम्ह कवण कुल वाट कवण धम्म इह लोग पुणु ॥६॥
कइ घरि कइ पोसाल, लियउ सामाइकु पडिक्कमउ ।
पच्चक्खाणु प्रह कालि जं सक्कउ तं पच्चखउ ॥७॥

घात (घत्ता)

अरिरि संभरि अरिरि संभरि-दव्व सचित्त विगईय ।
तहं पाणइय वत्थ कुसुम, तंबोल वाहण सयल ।
सरीर विलेवणइ बंभचेर, दिसि न्हाण भोयणए ।
जो जाणइं चउद ए पय, नितु नितु करइ प्रमाणु ।
सो नरु निश्चइ पामिसी, देवहं तणउं विमाणु ॥८॥
सयरह ए सोवु करेवि, धोवति पहिरवि रुवडीअ ।
पूजहु ए भाउ धरेवि, घर देवालइ देउ जिणु ॥९॥
गंधिहिं ए धूविहि सार, अक्खिहिं पुल्फिहिं दीवइहिं ।
नेवजिए फलिफार, अट्ठ पगारीय पूज इम ॥१०॥
देवहं ए तणउं जु देउ, पूजहु जाइ वि जिण-भवणि ।
निम्मलु ए अकलु उभेउ, अजरु अमरु अरहंत पहु ॥११॥
पक्खिहिं ए मुक्खि तुरंतु, राग दोस सवे जो जिणए ।
रयणिहि ए त्रिहु सोहंतु, नाणिहिं दंसणि चारितिहिं ॥१२॥
मिल्हिउ ए चउहिं कसाय, पंच महव्वयभारु धरु ।
छव्विहिं ए जीवनिकाय, सदय मनु सत्त भय जो चयइ ॥१३॥
अट्ठिहिं ए ग(म?)दिहिं मुक्क, बंभगुपिति नव सीचवइ ।
आलसी ए खण वि न ढूकु दस दसविह धम्मु समुद्धरणु ॥१४॥
जाइवी ए पोसहसाल, एरिसु दु(सु?)हगुरु वांदियइ ।
माणुस ए ति किरि सियाल जाहन देउ न धम्मगुरु ॥१५॥
अक्खई ए सुहगुरु धम्मु, सावधाण धम्मिय सुणहु ।
धम्मह मूलुमरंभु जीवदया जं पालियउ ॥१६॥
झूटउ ए मं बोलेह, आलु दियंतहं आलु सउ ।
देखि वि ए कहइं भूलेहु, परधणु तृणु जिम मन्नियइं ॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियं तिय ए करि संतोसु पर तिय मन्नहु मा बहिण ।
परिहरि ए कूडउ सो सुकरि, परिमाणु परिग्गहहं ॥१८॥
जाणहु ए धम्मह भेउ, दाणु सीलु तपु भावणइ ।
देसण ए इम णिसुणेवि गुरु वंदिवि जं घरि गयउ ॥१९॥
धोवंतीए मिल्हि वि ठाइं, तव वसाउ समाचरइ ।
प्राइहिं ए पापहं चाइ, न्याइहिं धणु कणु मेलवए ॥२०॥

द्वितीय भाषा (घत्ता)

कहउं पनरस कहउं पनरस कम्म आदाण ।
इंगाली-वण-सगड भाड-फोड-जीविय-विवज्जउ ॥
दंत-लक्ख-रस-केस-विस-वणिज कज्जि म कया वि सज्जउ ॥
जंत-पीड-निल्लंछणइ-असईय पोस दव दाणु ।
सर-दहसोसु सो किम करइ हवइ सुमाणु सुजाणु ॥२१॥
लोहकार सुंनार ठठार भाडइ भुंजअन्नं कुंभार ।
अनुखीरोये जिन रचिकंति ते इंगाली कंमि लयंति ॥२२॥
कंद कउ तृण वण फल फुल्लइ विक्कहिं पन्न जि लब्भइ मुल्लइ ।
खंडणु पीसणु दलणु जु कीजइ वणि वियाजु कंमु सोवि कहिजइ ॥२३॥
घडहिं सगड जे वाहइ वी कहिं, तीजइ कम्मदाणि ति ढूकहिं ।
खर वेसर महिं सुद्द बलिद्दा, भाडइ भारु वहावि सद्दा ॥२४॥
कूव सरोवर खाणि खणंति, अंनु विउड कंमु जि करंति ।
सिला कुट्ट कंमू हल खेडणु, फोडी कंमु जु भूमिहिं फोडणु ॥२५॥
दंत केस नह रोमइ चम्मइ, संख कवड्डइ जो सइ सुम्मइ ।
कसथूरी आगइ जु वि साहइ, सो नरु आवइ धमु विराहइ ॥२६॥
लाख गुली धाहडीय महूवा, टंकण मणसिल वणिज महूवा ।
तुवरी वज्जाल वस कूडा, हरियाला नहु होही रुवडा ॥२७॥
सुर वस आमिसु अनु माखणु, रसवणिज्जु किम करइ वियक्खणु ।
दुप्पय चउप्पय वणिजि जु लग्गउ, केसवणिज नेमु तिणि भग्गउ ॥२८॥
विस कंकसिया हल हथियारा, गंधक लोह जि जीवहं मारा ।
ऊखल अरहट घटं रट वणिज्ज, इम विसवणिजु करइ जु अणज्जु ॥२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घाणी कोल्हू अरवहट वाहइ, अनुदलि एलउ जु कुवि करावइ ।
इणि परि कहियइ कम्मादाणु जंतपीड परिहरइ सुजाणु ॥३०॥
जोयण निग्घिणु अंक दियावइ, वीधइ नाकु मुक्क छेदावइ ।
गाइ कन्न गल कंवल कप्पइ, सो णिल्लंछणदोसिहिं लिप्पइ ॥३१॥
कुक्कुड कुक्कड मोर बिलाई, पोसंतहं नहु होइ भलाई ।
सूवा सारो अंनु परेवा, धम्मधुरंधर नहीं धरेवा ॥३२॥
देवु देविणु घणु जीउ म मारहु, सरदह नइ जलु सोसु निवारहु ।
पनरह कम्मादाण विचारु, जाणिवि करि सूधउ ववहारु ॥३३॥
धारु धमइं रस अंजण जोवइ, जूइ रमइ इम दविणु न होवइ ।
कुवसणि इक्कु वि सुउ न गंमीजइ, तिय आगति चहुं भागिहिं कीजइ ॥३४॥
पहिलउ भागु निधिहिं संवारइ वीजउ पुणु वचसा उवधारइ ।
तीजउ धम्म भोगु निरदोसु चउथइ दुपय चउप्पय पोसु ॥३५॥

तृतीय भाषा (घत्ता)

निसुणि धम्मिय निसुणि धम्मिय, कूड तुल माण ।
क्रय कूडो परिहरहु कूड लेख तहं साखि कूडिय
दुत्थिय दुहिय सवासणिय मित्त दोह न हु वातरुवडिया ।
देवदव्वु जो गुरुदविणु, भक्खइ भवु अगणंतु ।
विणु सम्मत्तिण सो भमइ, इम संसारु अणंतु ॥३६॥

जिम आहारहं तणीय सुद्धि, मुनि चारितु लीणउं ।
हाटहं हूतउ घरि पहूतु जउ भोजन वारहं ।
पूजा बीजी वार करइ, वांसिउ नवि वारहं ॥३७॥

दीण गिलाणहं पाहुणहं, संभाल करावइ ।
सइ हत्थिहिं सूधउ, आहारु मुणिवर विहरावइ ॥

उसह वेसह वत्थ पत्त, वसही सयणासण ।
अवरु वि जं इहं तित्थ, तं देइ सुवासणु ॥३८॥

जइ तहिं गइ न हुंति साहु, तउ दिवस आलावइ ।
मनि भावइ आवइ सुपत्तु, तउ भल्लउ होवइ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवणु कियउ पच्चक्खाणु, आजु मनि इम संभारइ ।
वइठउ वाइं सचित्त चाइं, आहारु आहारइ ॥३९॥
करि भोयणु निद्दहविहूणु खणु इकु वि समत्तउ ।
पाछिलइ पहरि पुण वि, पोसालह गम्मइ ॥
पढइ गुणइं वाचइ सुणेइ, पुच्छेइ पढावइ ।
अह जु वियालीय करणहारु, सो णिय घरि आवइ ॥४०॥
दिवसहं अट्ठम भाग सो सि जीमेइ सुजाणू ।
पाछिलए दो घडिय दिवसि चरिमं पचखाणू ॥
संघ(ध?)हं तीजी करिवि, सामाइकु लीजइ ।
तउ देवसियं पडिकमेवि, सब्भाउ करिजइ ॥४१॥
रत्तिहिं वीतइ पढम पहरि, नवकारु भणेविणु ।
अरिहय सिद्धि(द्ध?) सुसाहु धम्म सरणइं पइसेविणु ॥४२॥

चतुर्थ भाषा (घत्ता)

अंति निद्दह अंति निद्दह चित्ति चिंतेइ ।
सेतुंज्जि उज्जिलि चडिवि जिणहं, पूय कइंयहं कराविसु ।
साहमिय गउरउ करि सुकइय, कइ पुत्थउ लिहाविहातिसु ॥
छंडवि धंधउ इह धरहं, कइ हउं संजमु लेसु ।
समरि सिलग्गउ कइय हउं फेडिसु कम्मकिलेसु ॥४३॥
वंदिवि दिवसु सूरि वादीययए (?)
संभलहु भाविय हु सीख तुम्ह दीजए ।
गलहु उम्हालए तिन्नि वारा जलं,
लेविणु गलणु गलण तुम्हिअइ नीसलं ॥४४॥
सेसकाले वि बे वार जलु गालहो,
मीठ-जलि खार-जलि जीव मा मेलहो ।
राखउ सूकतउ तुम्हि संखारउ
वस्त्रहं धोवणु गलिय जलि कारहो ॥४५॥
दुद्ध दहि तिल्लु घिउ तक्क ढंकि वि धरहु ।
मक्खि-घाए सुहमा जीव तहिं पडि मरहु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोधिवि धुंसु रंधंति पीसहिं दलहिं ।
पउंजि वे वारइ चुल्हि घर हू खलइं ॥४६॥
जाणवि जीउ जे ईंधणं बालहिं ।
अट्ठमि चउदसिय-मुह ते पालहिं ॥
जीवदया सारु जिण वयणु जे संभरइं ।
जयण पालंति नर नारि ते भव तरहिं ॥४७॥
पक्ख चउमास संवच्छरे खामणा ।
सुगुरुपासंमि जिय करिय आलोयणा ॥
करइ जो आउ-पज्जंत आराहणा ।
तासु परलोइ गइ होइ अइ-सोहणा ॥४८॥
एम जो पालए पवर सावय-विही ।
अट्ठभव माहि सिवसोक्ख सो पाविही ॥
[1]**रासु पदमाणंदसूरि**-सीसिहिं इहो ।
तेर इगहत्तरइ रयउ ल(?) संगहो ॥४९॥
जो पढइ जो सुणइ जो रमइ जिणहरो ।
सासणदेवि तउ तासु सामि धुकरो ।
जाम ससि सूरु महि मेरु नंदणवणं ।
ता जयउ तिहुयणे एहु जिणसासणं ॥५०॥

॥ इति श्रावकविधि रासः समाप्त मिति भद्रं ॥छ॥

—x—

१. रासकी प्रथम गाथामें "भणइ गुणाकरसूरि गुरो" ऐसा पाठ है । ४९वीं गाथामें "रासु पदमाणंदसूरि-सीसिहिं इहो" ऐसा पाठ है । दोनोंका संकलन किये जाने पर पदमाणंदसूरि के शिष्य गुणाकरसूरि द्वारा रास रचित हो ऐसा प्रतीत होता है । सम्पादक महोदयने पद्मानन्दसूरि की रचना इसे बताई है । विज्ञ लोग निर्णय करें ।

अपभ्रंश की यह रचना काफी सम्मार्जन की अपेक्षा रखती है । अपभ्रंश के अभ्यासु जन सम्मार्जन व शब्दकोश करेंगे ऐसी आशा है । **-शी.**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीदेवचन्द्रमुनिकृत

तेजबाई व्रतग्रहण सज्झाय

सं. मुनिसुजसचन्द्र-सुयशचन्द्रविजयौ

काव्यनुं मूल्य मुख्यत्वे कर्तानी काव्य रचवानी शैली, काव्यना विषय, काव्यनी भाषाकीय सामग्री, काव्यनी ऐतिहासिकता आदि बाबतो उपर आधार राखे छे. प्रस्तुत कृति ऐतिहासिक दृष्टिए महत्त्वनी होइ अहीं प्रस्तुत करी छे.

जिनेश्वर भगवंतोअे विराधना-(पाप)थी बचवा महाव्रतो (चारित्रमार्ग)नो उपदेश आप्यो. जेओ महाव्रतो न लई शके तेवा जीवो माटे महाव्रतनी अपेक्षाअे नानां अने सरळ (सुगम) अेवां पांच अणुव्रतो, अणुव्रतोनी पुष्टि करनारां त्रण गुणव्रतो अने संयमजीवननुं शिक्षण आपतां चार शिक्षाव्रतो अेम बार व्रतोनो उपदेश आप्यो. तेजबाई नामनी श्राविकाअे सं. १६८२मां पूज्य विजयानन्दसूरिजी पासे जे व्रतो स्वीकार्यां तेनुं वर्णन करती सुन्दर अेवी आ सज्झाय देवचन्द्रजी नामना कविअे रची छे. कर्ताअे पोते कोना शिष्य छे ? कइ संवतमां कृतिनी रचना करी छे ? ते कोईपण बाबतनो काव्यमां उल्लेख कर्यो नथी.

जैन गुर्जर कविओ भाग-३मां १७मी सदीना उत्तरार्धमां देवचन्द्रजी नामना कविनी नवतत्वचोपाई, शत्रुंजय तीर्थ परिपाटी, पृथ्वीचंदकुमाररास आदि केटलीक रचनाओ नोंधायेली छे. तेओ हीरसूरिजी म.नी परम्परामां महोपाध्याय भानुचन्द्रजी गणिना शिष्य हता. ते ज देवचन्द्रजी प्रस्तुत कृतिना कर्त्ता पण होई शके छे. आ बाबतनो कोई स्पष्ट उल्लेख मळतो नथी. परन्तु जैन परम्पराना इतिहास भाग-३, पृष्ठ ४०८मां आ अंगे नीचे मुजब नोंध मळे छे.

''भट्टारक विजयसेनसूरिना स्वर्गगमन बाद सं. १६७२मां तपागच्छमां बे पक्ष पड्या त्यारे महो. भानुचन्द्रगणि वगेरे श्री विजयानन्दसूरिना पक्षमां दाखल थया.''

आ उपरथी अेटलुं कही शकाय जो सं. १६७२ पछी भानुचन्द्रजी विजयानन्दसूरिना पक्षमां गया होय तो कदाच व्रतग्रहण प्रसंगे भेगा थवानुं बन्युं होय. ते वखते देवचन्द्रजी पण उपस्थित होय अने तेमना गुणोथी आकर्षाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा तेजबाई श्राविकाना आग्रहने लई देवचन्द्रजीअे आ कृति रची होय अेम बने.

कृतिमां केटलांक स्थानो अस्पष्ट छे, जे मूळरूपे ज अहीं उतार्या छे. आ प्रत श्रीनेमि-विज्ञान-कस्तूरसूरि भण्डारना संग्रहनी छे. प्रत आपवा बदल व्यवस्थापकोनो आभार.

	शब्दकोश	गाथा नं.
१.	पोति = आवी मळे.	ढा. १.१
२.	सुधी = साची	४
३	वासर = दिवस	७
४.	मे = मारे	७
५.	वांहणि = वाहन	८
६.	मेहूण = मैथुन	८
७.	लोहडीनीत = लघुशङ्का	९
८.	जुवटुं = जुगार	९
९.	क्रम = करमियां	१०
१०.	भाख्य = भाख	११
११.	थापिणमासो = थापण ओळववी	११
१२.	साख्य = साख (साक्षी)	११
१३.	अदता(त्ता)दान = न आपेलुं लेवुं ते	१२
१४.	वरसइ = ?	१३
१५.	कुटि = झूंपडी	१७
१६.	माणसइ = मनसि - मनमां ?	१७
१७.	अधकी = वधारानी	१८
१८.	सइं = बधा	१९
१९.	छाकाछोल = छोळो उपर छोळो	१९
२०.	उपदसी = ?	२३
२१.	दिसिपरिमाण = अेक के वधु दिशामां	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	गमनागमननुं माप	ढा. २.१
	धुरंधर = बळद	१८
२२.	वेहलि = वहेल - गाडुं	७
	पोठी = पोढियो	ढा.२ गा.८
२३.	संपुतसय्या = ?	९
२४.	खलकंकोड = खंखोळियुं (?)	११
२५.	अंघोल = नाहवुं	११
२६.	बरटी = बंटी (अेक हलकुं धान्य)	१५
२७.	झालर = वाल	१५
२८.	नागली = बावटां जेवुं अेक अनाज	१६
२९.	भांग = वटाणां जेवुं अेक कठोळ	१६
३०.	चीणो = अेक जातनुं अनाज	१६
३१.	राजकदैवकइं = ?	१७
३२.	गोटा - ?	१८
३३.	डोडी - एक वनस्पति	
३४.	आरिआं - काकडी	२१
३५.	खीजडी - एक झाड	२१
३६.	ओढवां - ?	२१
३७.	शिंघोडा - शिंगोडा	२२
३८.	निलुआ -	२२
३९.	सरघुओ - सरगवो	२२
४०.	निवाहलोलि - ?	२४
४१.	अगथिआ - अेक झाड	२४
४२.	आउलि - दातण माटे	२५
४३.	अघाडों - अेक छोड.	२५
४४.	आखडी - नियम	२६
४५.	करमांदान - जे व्यापारथी कर्म घणा बंधाय तेवो व्यापार	२७
४६.	चुहला - चूला	२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. पाणी पाट - ? ३२
४८. माटि टोपला - ? ३२
४९. घोणी - नाहवुं ३४
५०. समंध - सम्बन्ध ३५
५१. आदेसथी - ? ढाळ ३.१
५२. अनरथडंड - प्रयोजन वगरनी हिंसारूप ३.१
५३. योउं - जोउं २
५४. सोकठां - जुगार २
५५. पाली - छरी ३
५६. कटारडी - बे बाजु धारवाळुं शस्त्र ३
५७. चूहलेतरूं ? ३
५८. देसावगासि - व्रतो लेती वखते मोकळा राखेला क्षेत्रनो संक्षेप करी एक अल्प आरंभवाळा भागमां रहेवुं ५
५९. अतिथसंविभाग - अतिथिने दान आपवुं ७
६०. गुरुनिग्रह - गुरुभगवंतनो आदेश १०
६१. अन्नत्थणाभोगेणं - पच्चक्खाण भूलाई जवाथी वस्तु वपराय ते ११
६२. सहसागारेणं - सहसागारथी - इच्छा न होवा छतां पराणे वस्तु वापरवी पडे ते ११
६३. महत्तरागारेणं - कोई विशिष्ट प्रयोजन ऊभुं थाय ने वस्तु वापरवी पडे ११
६४. सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं - चित्तमां समाधि टकाववा माटे वस्तु वापरवी पडे ते १२

अर्हं नमः ऐं नमः

॥ ए६०॥

श्रीसरसतिनइं करूं प्रणाम, जिम सिझइ मनवंछितकाम,
बार व्रतनो करूं सज्झाय, पुण्य घणुं जिम पोति थाय ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रणमुं देव सदा अरिहंत, श्रीसुसाधु गुरु किरिआवंत,
धर्म केवलीनो भाख्यो सार, तणि तत्त्व धारूं निरधार ॥२॥
कुगुरू कुदेव कुधर्म परिहरूं, मिथ्यामति संगति नवी(वि)करूं,
देव सदा जांहरू (जूहारूं) मनरूलि, छतइ योगि वांदुं गुरु वली ॥३॥
देवतणी सामग्री विना, करवी एक चईतवंदना,
पूर्व दिसिनइं साहमा रही, एह वात सुधि सदही ॥४॥
दिन प्रति गणवा दस नोकार, सुधो भाव धरि निरधार,
आगल पाछल पोहोचाडुं वली, जो न गणाय कारण भणी ॥५॥
नोकारसि(सी) तणुं पचखाण, करवुं नित उगमतइं भाण,
रात्रि पणि करवो दुविहार, कारणि जयणा कोईक वार ॥६॥
व(वा)सर प्रति देहरइ दोकडा, पांच मुकवा मे रोकडा,
साधारणनइं ज्ञान अमारि, दोकडा पाँच पाँच मन धारिं ॥७॥
जे मोटि दस आसातना, देहरइ टालुं एकमनां,
पाणि भोजन नइं तंबोल, वांहणि मेहूण सयण कल्लोल ॥८॥
वडीणि(नी)त नइं लोहडीनि(नी)त, थुं(थूं)क जुवटुं वरजु नित
देवगभारइ ए टालीइ, तो समकित सुधुं पालीए (इ) ॥९॥
पिहलइं व्रत मोटा त्रस जीव, संकलपी(पि) नि[र]पीराध अजि(जी)व,
न हणुं क्रम बालादिक तणी, जयणा आप कुटंबह भणी ॥१०॥
कन्या गाय भोमिनइं भाख्य, थापी(पि)णमोसो कुडि साख्य,
ए मोटां जे जु(जू)ठां पांच, तेह तणो परिहरूं प्रपंच ॥११॥
खात्र खणी चोरि नवी करूं, वाट पाडि कोइनुं नवि हरूं,
राजडंड जेहथी होय, अदतादाननुं पचवु(खु) सोय ॥१२॥
दाणचोरि वरसइं मोकली, रूपइया सोनि सवी(वि)मली,
लाधी वस्तु घणीनइं दीउं, घणी न मिलइ अरध धर्मइं दीउं ॥१३॥
चोथइ व्रत कायाइं सदां, पालुं जिम पामूं संपदा,
मन वचनि जयणा योइ, ब्रह्मव्रत मुझ एणी परि होइ ॥१४॥
पांचमइं परिग्रहनुं पचखाण, इच्छाइं कीधुं परिमाण,
धन रूपईया पांच हजार, धान तणा मण त्रणि हजार ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाडि(डी)खेत तणो परिहार, घर खडकीबध कलपइ च्यार,
हाट पांच रूपुं मण एक, हेम सेर दस राखुं छेक ॥१६॥
कुटि मोकली भणसइ च्यार, वली मोकली पांच वखारि,
पांच फरत खांनां राखी(खि)यां, चोपद ते पणि [इहां]भाखी(खि)यां ॥१७॥
गाय भूइंसनइं बोकडी, पांच पांच अधकी आरवडी,
पांच जोडि धुरंधर तणी, पांच दास-दासी तिम गणी ॥१८॥
जहवेर मुझ कलपइ बे सेर, करि संवर टालुं भवफेर,
साकर खांड तेल घी गोल, मण ब-बे सइं छाकाछोल ॥१९॥
सेर अग्यार कपु(पू)र प्रमार(ण), कस्तुरी नव टांक वखाणि
सुझइ सोपारी मण वीस, केसर कलपइं टांक च्यालीस ॥२०॥
पांच सेर हींगलो सिंदूर, वरस दिवस माहरइं भरपूर,
साडला नइं कपडा च्यालीस, वली कपासीआ भण पांचवीस ॥२१॥
गंधिआणुं भण कलपइ वीस, वणिज काजि मुझ वसु जगीस,
पांच हजार रूपैया तणूं ए सर्वमान वरस प्रति गणुं ॥२२॥
सजनादिक कारणि उपदसी ? जयणा सु(सू)क्षम मनि वसी,
एणिपरि लीधुं व्रत पांचमुं, अतीचार टाली दुख दमुं ॥२३॥

ढाल - २

छठुं दिसी(सि) परिमाण, व्रत हवइ आवरूं,
चिहूं (हुं) दीसी (दिसि) गाऊ सोलसइं ए ॥१॥
जलवट-थलवट मान, ए सवी(वि) जाणवुं,
जिहां वसुं तिहां थकी ए ॥२॥
ऊंचुं निंचूं(नीचुं)बार, गाऊ जायवुं
कगल कासी(सि)दनी जयणा ए ॥३॥
व्रत सातमुं हवइ सार, रंगि आदरूं,
मान भोग-उपभोगनुं ए ॥४॥
दिन प्रति सचित वीस, पांच विगय वली,
साठि द्रव्य मुझ मोकलां ए ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाहणी(वाणहि?) जोडां पांच, तंबोल, अध सेर,
वस्त्र वि(वी)स मुझ मोकलां ए ॥६॥
कुसुम भोग नि[षे]ध, जयणा कारणि,
पांच वेहलि छ गाडला ए ॥७॥
अवर वाहन वली सात, उंट तुरंगम,
पोठी बलद सहू मली ए ॥८॥
संपुन सय्या सात, आसन ओग(णि)णीस,
सेर डोढ विलइपन ए ॥९॥
अब्रह्म तणो निषेध, गाऊ च्यालीस
चिहू(हुं) दिसी(सि) दिन प्रति मोकलुं ए ॥१०॥
मासइं नाहण पांच, खलकंकोडिइं,
नित अंघोल बे मोकली ए ॥११॥
दिन प्रति भात अधमण, पाणि(णी) छ घडा,
पीवा वावरवा थईए ॥१२॥
अनंतकाय बत्रीस, बावीस अभख्य,
जावजीव कलपइ नही ए ॥१३॥
गहूं चोखा तिल जारि, चोला मठ चिणा,
मग अडदनइं बाजरी ए ॥१४॥
कलथी बरटी कांग-अलसी ओली(लि)या,
तुयरि झालर जव मेथी ए ॥१५॥
नागली लांग मसुर, चीणो कोदरा,
धानजाति मुझ मोकली ए ॥१६॥
अवर सवइं पचखाण, राजकदैवकइं,
कालादि तगरणि जयणा ए(?) ॥१७॥
श्रीफल आंबा जाति, गोटा शेस(ल)डी ?
चोला गुला(वा)र तणीं फली ए ॥१८॥
चणा फलीनी जाति, सूआनि(नी) भाजी,
भाजी तांदलजा तणी ए ॥१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डोडि(डी)डाडिम पान, पहोक गहूतणो,
बाजरी जारिनो मोकला ए ॥२०॥
तुरिआं आरी(रि)आं जाति, खीजडि(डी) खडबु(बू)जां,
केलां ली(लीं)बु ओढवां ए ॥२१॥
कोठ सीं(शिं)घोडा द्राख, निलुआ कारिलां,
गलो सरघुओ ली(लीं)बडो ए ॥२२॥
टींढुरां कंकोडा, सेलडी सोपारि(री),
बि(बी)जरूं नइ करमदा ए ॥२३॥
आबुआ निवाहलो लींबू(बु) सफरजन,
अरणी अगथी(थि)आनी फली ए ॥२४॥
केला आंबलां सार, दातणनि(नी)जाति,
आउलि अघाडों लिं(लीं)बडो ए ॥२५॥
बीजी नीलवणि जाति, सघली आखडी,
अरडु(डू)सो मुझ मोकलो ए ॥२६॥
पनर करमांदान, आजीवका हेतइं,
जावजीव मइं वरजवा ए ॥२७॥
वरस प्रति व्यापार, पांच हजारनो,
घरनुं भाडुं मोकलुं ए ॥२८॥
दिन प्रति चुहला पांच, माथा गुथवा सात,
अघी(धि)क[मटूं] सुझइं नही ए ॥२९॥
दिन प्रति मण पांच, मुझनइं मोकलुं,
दलवुं खांडवुं भरडवुं ए ॥३०॥
विहवापगरणि(?) काजि, जयणा अधिकनि(नी),
बार सेर वलि(ली) सेकवुं ए ॥३१॥
नित पाणी पाट एक, माटि टोपला,
वरसइं च्यार चीर मोकला ए ॥३२॥
दस भण खारूं शाम्व, वीस मण आंबली,
दस मण मीठुं मोकलुं ए ॥३३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध तणो निषेध, धोणि(णी) आठज,
मासइं धोणी मोकली ए ॥३४॥
सगपणनइ समंध, विहवा मेलवा,
च्यार सु(सू)झइ वरसना ए ॥३५॥

ढाल - ३

हवइं पालुं व्रत आठमुं अनरथडंड टालुं
दुरध्यान पाप आदेसथी, खप करि(री)मन वालुं,
बारे व्रत मुझ मन वस्यां ॥१॥
चोर मारंतो नवी(वि)जोउं, सति(ती) चढति(ती)काठि,
रमता भवाईआ नवी(वि) योउं, न जाउं सोकठां वाटइ
बारे व्रत मुझ मन वस्यां ।२॥
सुडि (सूडी) पाली कटारडी, चूहलेतरूं अगनि,
विणि दाखीण आपु नहिं, न थाउं परमादइं मगन
बारे व्रत मुझ मन वस्यां ॥३॥
नोमइं सामायक व्रतइं, पडिकमणुं सोाई,
मासइं दस पोहचाडवां, परमाद गमाई,
बारे व्रत मुज मन वस्यां ॥४॥
दसमइं देसावगासी(सि)इं, चउद नि[य]म संभारूं,
साझइं संखइंपुं वली, मनथी न वी(वि)सारूं
बारे व्रत मुज मन वस्यां ॥५॥
अग्यारमइ पौषध व्रतइं, वरसइं पोसइ एक,
रूडि परि आराधवो, मन धरि(री) वी(वि)वेक,
बारे व्रत मुज मन वस्यां ॥६॥
अतित[थ]संविभाग व्रत बारमइं, करूं साधनि(नी)भगतइ,
साधवी श्रावक श्राविका, छतइ योगि संयुगत,
बारे व्रत मुज मन वस्यां ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार आगार संयुत ए, पालुं पचखाण,
छ छींडी छ मोकली, सुणयो गुण जाण,
बारे व्रत मुज मन वस्यां ॥८॥

पचखांणभंगइं करूं, एकासणुं एक,
श्रीगुरु प्रचरण पसाउलइं, मुझ हयो विवेक
बारे व्रत मुज मन वस्यां ॥९॥

राजा गण बलवंतनो, देवता अभियोग
गुरूनिग्रह आजीविका, छ छींडी योग
बारे व्रत मुज मन वस्यां ॥१०॥

अन्नत्थणाभोगेणं सही, सहसागारेणं,
महत्तरागारेणं सव (व्व), समाहिवत्तिआगारेणं
बारे व्रत मुज मन वस्यां ॥११॥

जाणो च्यार आगार ए, एणे पचखाण,
भाजे नही मुझ इम कह्युं, श्रीगुरु गुण जाणि
बारे व्रत मुज मन वस्यां ॥१२॥

संवत सोलते ब्यासीइं, ऊचर्या व्रत बार,
श्रीविजयाणंदसूरी(रि)कहनइं, तरवा संसार
बारे व्रत मुज मन वस्यां ॥१४॥

श्राविका **तेजबाई** तणो, ए व्रत सज्झाय,
देवचंद्र मुनि इम भणइ, एह सुगति उपाय,
बारे व्रत मुझ मन वस्यां ॥१५॥

छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

C/o. अश्विन संघवी
कायस्थ महोल्लो, गोपुपुरा,
सूरत-१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ऋषभदास कृत

श्रीमल्लिनाथनो रास

सं. साध्वी दीप्तिप्रज्ञाश्री

'कवि ऋषभदास' ए मध्यकालना साहित्य-जगतनुं बहु ज जाणीतुं नाम छे. आ जैन श्रावके ३२ थी वधु रासाओ रच्या छे, अने लघु रचनाओ पण घणी रची छे.

सत्तरमा सैकाना, खम्भात-जेने कवि 'त्रंबावती'ना नामे ओळखावे छे (क. १२९) - त्यां तेमणे आ रास सं १६८५ना वर्षे पोष शुदि १३ने रविवारे (क. २९०) रच्यो छे. ते समये खम्भातमां ८५ जिनालयो अने ४२ पौषधशाला-उपाश्रयो हता एम कवि निर्देश आपे छे. (क. २८६)

आ कविनी घणी रासादि रचनाओ प्रगट छे, प्रख्यात पण छे. तेमना विषे श्रीवाडीलाल जीवाभाई चोकसीए Ph.D. माटेनो शोधनिबन्ध आलेख्यो होवानुं पण जाणवा मल्युं छे. ए निबन्ध प्रकाशित थाय तो कवि विषे घणी घणी जाणकारी प्राप्त थाय ए निःसन्देह छे.

आ रचना जैन १९मा तीर्थंकर मल्लिनाथ भगवानना जीवनचरित्रनुं वर्णन करे छे. कविए ज निर्देश्युं छे तेम (क. २७८) जैन आगम-अंगसूत्र ज्ञाताधर्मकथाङ्गना आधारे तेमणे आ रास रच्यो छे. अर्थात् ते आगममां वर्णवेल 'मल्लिज्ञात'नुं गुजराती निरूपण ते आ रास एम समजी शकाय छे. दूहा, चोपई, ढाल वगेरेमां पथरायेला आ रासमां २९७ कडी छे. तेनी एक हस्तप्रति बोटादना 'आ. श्रीविजयलावण्यसूरिचित्कोश' मांथी झेरोक्स नकलरूपे प्राप्त थई छे, जेना आधारे आ सम्पादन करेल छे. मने जाणवा मल्युं छे के आ प्रति ते कवि ऋषभदासे स्वहस्ते लखेली प्रति छे. ए जाणतां मने अनहद हर्ष अनुभवायो छे. मल्लिनाथ भगवाननुं जीवन होय, ते पण कविना हस्ताक्षर परथी ऊतारी तैयार करवानुं होय, तो केटलो आनन्द होय ! १४ पत्रोनी आ प्रतनी नकल आपवा माटे ते श्रीलावण्यसूरिचित्कोश-बोटादना कार्यकर्ताओनो हुं अहीं आभार मानुं छुं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ रचना विषे कांई पण लखवुं ते मारा माटे गजा बहारनुं छे. छतां एटलुं जणावीश के कर्ता कवि पोते जे प्रकारे बोलता-लखता हशे तेवीज भाषा तेमणे आमां उपयोगमां लीधी छे. जेमके ओहालास (उल्लास), उशभ (अशुभ) इत्यादि. भाषाविदो माटे आ बाबत रसप्रद अने अभ्यासनो विषय बने तेम छे. कविनी आवी भाषाना कारणे घणा शब्दो समजाता नथी, ए पण जणाववुं जोईए. आवां अमुक स्थानोए (?) एम चिह्न मूक्युं छे.

कविए क्यांक क्यांक मूकेलां सुभाषितो पण मजानां छे. मूळ संस्कृतनां सुभाषितोने सहजभावे भाषामां अवतारवानुं काम मजानुं थयुं छे. जेमके- क. ८३ क्रमांकमां श्लोक (शलोक) जुओ : "कामारथी तस कीतो लया..." 'कामार्थिनां कुतो लज्जा ?' ए पद्य तरत ज याद आवी जशे. ए ज प्रमाणे क. १३२-३३ना दूहा अने क. १३४ मी गाथा पण वेधक सुभाषितो लागे छे. क. १६३ थी १७२ क्रमांकना दोहरा पण एवांज सरस सुभाषितो छे, जे 'भोज' राजाना नामोल्लेख साथे होई भोजप्रबन्धमांथी अवतारेल छे तेम तुरत जणाई आवे छे.

क. १९१ मां भैरव, कल्याण, नट रागनो उल्लेख कविना संगीत-ज्ञाननी तथा प्रेमनी शाख पूरे छे. इतिहासनी नजरथी जोवामां आवे तो, तपागच्छनी बे शाखा थई, ते वखते आणसूर शाखाना मूळ आचार्य श्री विजयानन्दसूरिना राज्यमां कविए आ रास बनाव्यो छे (क. २७६). त्रंबावती-खम्भातनुं वर्णन करतां त्यांना विशिष्ट गृहस्थ श्रावको अने तेमनां सुकृतोनुं कविए सुन्दर वर्णन कर्युं छे. पारेख वजीओ-राजीओ (बे भाई हता), जेणे साडा त्रण लाख रूपियानुं सुकृत करेलुं (क. २८०); ओसवालवंशीय सोनी तेजपाल, जेणे शत्रुंजय अने गिरनारना तीर्थोद्धार कराव्या (क. २८१), अने बे लाख ल्याहरी (चलण) खरची हती; संघवी सोमकरण-उदयकरण, ओसवाल राजा श्रीमल, ठक्कुर जयराज-जसवीर, ठक्कुर कीका-वाघा इत्यादिनां नामो नोंधीने कविए तत्कालीन खम्भातनी ऐतिहासिक स्थितिनुं चित्र आप्युं छे. खम्भातमां जीवदयानी संस्था ते काले पण हती ते पण (क. २८४-८५) अहीं नोंधायुं छे.

छेवटे वीसा पोरवाड वंशना महीराज संघवीना पुत्र संघवी सांगणना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पोते पुत्र छे, बार व्रतधारी श्रावक छे, एम वर्णवी रास पूर्ण थाय छे. (क. २९२-९३). क. २८८मां वर्णन छे ते प्रमाणे कविनुं घर, दुकान ने उपाश्रय नजीक नजीक हता, तो साधुओने पण निर्दोष आहार तथा निर्जन-निर्जीव स्थण्डिलभूमि आ गाममां सुलभ होवाथी आ क्षेत्रमां रहेवानुं मुनिराजो खास मन राखता, तेम पण निर्देश मळे छे.

॥ अं नमः ॥

॥ श्री मल्लीनाथनो रास ॥

दूहा ॥

सरस सकोमल सुदरी सुगणि साररूप ॥
सीहलंकी तु सरस्वती समरइ तुझ जिन भुप ॥१॥
गणधर गुण तुझ गावता त्हारो सघलइ वास ।
गुणीअण गुण तुझ समरता पुरइ पुरुषनी आस ॥२॥
वचन दीओ वाघेस्वरी देवी पूरे आस ।
मल्लीनाथ जिनवरतणो रंगिं गास्युं रास ॥३॥

चोपई ॥

रास रचु हुं रंगिं करी प्रथम भुप यम सुर म्हाहरी ।
पश्चीम माहावदेमांहि जोय शालीलांवती वीजइ त्यांहा होय ॥४॥
वीतशोका नगरी ते माहि म्हाबलं न(ना)मिं राजा त्याहिं ।
सबल प्रतापी ज्यम रवी देव अनेक भुप करइ तस सेव ॥५॥
वसन सात नीवारइ त्यांहि अकर अन्या नही ते पूरमाहिं ।
पालइ लोकनिं प्रेमइं करी देस वदेसि कीरति वीसतरी ॥६॥
सुरवीर पंडीत दातार वीबुध पूरषनो जे आधार ।
कवीत काव्य गाथानो जाण पूरष वीनोधी वलभ प्राण ॥७॥
दान सील कुल ज्ञानिं करी अनेक पूरष सेवइ तस पुरी ।
सात मंत्र ते सुदर हुआ तेहेना जीव नही जुजूआ ॥८॥
सातइ सात सायर परि भर्‍या सातइ स्त्री सुदर जोई वर्‍या ।

सातइ न्हाना सातइ गुणी सातिं सात नरगगतिं हणी ॥९॥
सातइ चालइ एकइ च्यंत ज्यम तरणीना अश्व अत्यंत ।
रूप कला विलछी जेह तेणइ करी सातइ सरखा तेह ॥१०॥
सातइ मत्री छइ ख्यत्री ग्नाति रहइ एगठा दीन निं राति ।
एक एक पाखइ न विसरइ प्राहिं भोजन भेला करइ ॥११॥

॥ दूहा ॥

भोजन करी करावीइ दूख सुख सूणी कहंत ।
दीजइ लीजइ प्रेमस्यु मेत्री एम वध्यंत ॥१२॥
वचन वाद निं, स्त्री एकात वणजह दुरि गया य ।
अवसरी चूक लोभइं पड्यो मंत्री एम पलांय ॥१३॥

॥ चोपई ॥

छइ दोष टालइ नर सार मंत्री राखइ सात कुमार ।
अचल धर्ण दीठइ **आणंद पूरण वसू वेसमण अभीचंद** ॥१४॥
म्हाबल राजा ते सातमो मंत्री-मेलो पूंनि हवो ।
सातइ साधकइ सुणता धर्म जाग्या टालवा पूर्वकर्म ॥१५॥
वरधर्म मुनीकइ दीक्षा लीइ अग्यार अंग गुरुं त्यांहांकणी दीइ ।
अनेक शास्त्र बीजां पणि भणइ करइ सझाय निं पातीक हणइ ॥१६॥
साति नर साथिं संचरइ विहारकरम महीमंडली करइ ।
सातइ राख्यो अस्यो वीचार सरखो तप करवो नीरधार ॥१७॥
सरखो तप सहुंइ आदरइ माहाबल रषि त्याहा माया करइ ।
कहइ मस्तग दूखइ छइ अती तेणइ छठ करस्यु रे जती ॥१८॥
मन च्यंतइ हुं मोटो अही परभवि मोटो थाउं तही ।
एणइ ध्यानिं तप अदीको करइ नारीवेद ऊपरयो सरइ ॥१९॥
माया कपट म करस्यो कोय क्रोध लोभ मानिं तप खोय ।
तजी ईरख्या साधइ धर्म जाय मुगतिम्हा टाली करम ॥२०॥
मुगतिपंथ म्हाबल साधेह थानक केटलां आराधेह ।
तीथंकर नामकरम वली जेह तेणइ थानकइं नीकाचइ तेह ॥२१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पणि माया तप महीमा जुयो त्रीजइ भवी स्त्रीवेदइं हुवो ।
तेणइ माया म म करयो कोय कपट तजइं सुखशाता होयं ॥२२॥
मुकी कपट छइ तप करइ माहाबल ते माया मनि धरइ ।
चोरासी लखि पूर्व आय सातइ जीव ते सुरपति थाय ॥२३॥
पाम्या सखरुं जइअंत वीमान बत्रीस सागर आउं नीध्यान ।
काईक हीण छनुं ज कहीश मल्लीतणुं पुरु बत्रीश ॥२४॥
चव्या देव ने पूरी आय एक अयोध्यानगरी राय ।
नामिं नृप हुंओ प्रतीबुध पालइ राज न गमइ ज अस्युध ॥२५॥
अंगदेसम्हां चंपा जुओ बीजो अंगमहीपति हुओ ।
कासीदेस नयर कासीह शंखराय त्रीजो हुओ सीह ॥२६॥
कुंणाला नगरी छइ ज्याहि चोथो रूपी राजा त्याहिं ।
अदिनशत्रुं पंचम रीधि घणी हस्तनागपूरनो ते धणी ॥२७॥
पंचालदेस कांपीलपूर ज्याहिं यत्रस्युत्रु छठ्ठो हुओ त्याहिं ।
माहाबल जीव चवइ सातमो मलीनाथ जीनवरनिं नमो ॥२८॥
जंबुद्वीप अनोपम ज्याहिं भरतखेत्र वसंतुं माहिं ।
वीदेहदेसनिं मीथुलापूरी राजा कुभ सरगिं यम हरी ॥२९॥
प्रभावती पटराणी जेह संसारसुख वलसंती तेह ।
फागण शुदि चोथिंसु चवइ, राणी कुखि ऊपनो हवइ ॥३०॥
स्यूपन चऊद देखइ नृपनारि गज वृषभो सही लछि वीचारि ।
कुंशम-दाम चंदो निं सुर धजा कुभ शर जल-भरपूर ॥३१॥
सागर देव-व्यमान सुमार रत्नरेढ अग्यनी ज अपार ।
चऊंद स्युंपन ए नारी लहइ जागी कंत तणइ जई कहइ ॥३२॥
कुंभराय कहइ सुत बलवंत होसइ चक्री के अरीहंत ।
अस्युं वचन भाखइ मुखि राय वाहाणइ तेड्या पंडीत राय ॥३३॥
छोडी पूस्तग बोल्या तेह चक्र कइ जिन होसइ एह ।
सुण वचन नि हरख्यो राय पंडीतनि कीधो ज पसाय ॥३४॥
नव महीना दीन उंपरि सात जातइ जाया सुता वीख्यात ।
मागशर शुदि अग्यारसि गणो जनम हुओ ज जिनेस्वरतणो ॥३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छपन कुमारी आवी ज्यांहि जिन माता नवराव्यां त्यांहिं ।
भूषण वस्त्र पिहइरावी करी रख्यापोटली बाधी फरी ॥३६॥
पछइ ईद्र सुरगीर लेई जाय चोसठि ईद्रनिं हाथे नाही ।
एक कोडि कलसा लखी साटि करी सनाथ लहइ शुभ वाटि ॥३७॥
चीवर कुडल देई करी जिनवरनिं घरि मुकइ फरी ।
नंदीस्वर सुर यात्रा करी देवलोकमा पोहोता हरी ॥३८॥
प्रभावती जागी जेटलइ सूता पूजी दीठी तेटलइ ।
कुभ पीता खरचइ बहु दाम **मलीनाथ** पाड्यु त्याहा नाम ॥३९॥
सूगंध कुशमनी माला बहु बीजा गंध भला जे सहु ।
एवी सेय सुगंधी जाय प्रभावती सुवा मंन थाय ॥४०॥
मली नाम ते माटइ धरयुं बीजु कार्ण ए आदरयुं ।
जीपसइ जीन मोहादीक मल । तेणइ नाम मली जीन भल ॥४१॥
अनुंकरमइं योवनवइ थाय नीलवरण दीपइ जिनराय ।
धनुष पंचवीस जेहनी काय लंछन कलस अछइ जीन पाय ॥४२॥
लख्यण एक सहइस निं आठ सबल रूप सुदर देह घाट ।
काशपगोत्र निं ईक्षाकवंश मेल्यां बहु त्याहा गुणनां अंश ॥४३॥
मलीतणुं जग जंपइ नाम रूपिं नारि हरावइ काम ।
भ्रह्मचारणी न वरइ कहुं त्रणि ज्ञानिं जाणइ सहुं ॥४४॥
मिं पूरविं माया तप कर्‌यो तेणइ करमिं स्त्री-वेद ज वर्‌यो ।
पूर्व मंत्र म्हारा नर जेह सूंधो तप करता वली तेह ॥४५॥
छइ जीव ते राजा हुंआ राज करइ ते सहुं जुजूआ ।
ते प्रतिबोधाई ज्यम सवे सोए ऊंपाय करुं हुं हवे ॥४६॥
सोवनमइ प्रतीमा एक सार कीधो पोतानो आकार ।
पोली माथइ छीदर करइ एक कवल नीत्य मांहि धरइ ॥४७॥
एवइ नगर अयोध्या धणी प्रतिबध राजा अत्य गुणी ।
पदमावती राणी तस जोय तेहनो नाम-मोहोछव होय ॥४८॥
तीहा फूल तणो एक दडो कीधो पंचवरणनिं वडो ।
देखी राय रलीआयत थाय अशो दडो नही दुजइ ठाय ॥४९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोल्यो तव सुबधी परधान भुपति तुम म करो अभीमान ।
दादुर जलि ऊंदकतो अती जाणइ कुप समुं को नथी ॥५०॥
त्यम तूम राय वखाणो दडो मिं दीठो छइ एहथी वडो ।
मली-म्होछविं दीठो तदा वरसगाठि हुई स्त्री जदा ॥५१॥
नारि कुमारी जाणी करी राइं मंत्रीनिं पूछयुं फरी ।
ते नारिनुं कस्युं सरुप मंत्री कहइ यम देवीरूप ॥५२॥

॥ दूहा ॥

गाहा-गाथइ नवि रीझीओ । **रीषभ** कहइ रागेण ।
रंभा-रूप्य न भेदीओ जोगी के दरीद्रेण ॥५३॥

॥ चोपई ॥

दारीद्री न लहइ रसभेह सुणी वात राजा हरखेह ।
नारी रूप लह्युं अद्भुत मीथलाम्हा मोकलीओ दुत ॥५४॥
एणइ अवसरि चंपानो धणी दूतो(?) मोकलइ कंन्या भणी ।
सोय कथा सूणतां स्युभ थाय घणा कालनुं पातिग जाय ॥५५॥
अरहनक श्रावकम्हा शरइ चंपामाहा ते रहइवुं करइ ।
धन कांजि ते चढीओ वाहाणि इंद्र वखाणइ बहु गुण जाणि ॥५६॥
समकीतस्युं जेहनिं वरत बार पडीकमणा पूजा वीवहार ।
न चलइ धर्मथी घणो ववेक सुणी देवता आव्यो एक ॥५७॥
काउछर्ग ध्यानिं श्रावक रहइ आवी देव तस एहेवुं कहइ ।
मुक्य धर्म खोटो शु करइ श्रावक वात हईइ नवि धरइ ॥५८॥
आकाशमाहिं ऊछालु वाण ध्यान न चूकइ श्रावक जाण ।
देविं परीसहि कीधो धणो धर्म न मुकइ ते आपणो ॥५९॥
ऊतम साध तणी ए सीम विरि मरइ नवि खंडइ नीम ।
स्त्रीअक्रपा रोवत शणगार (?) बीहींकिं नवी छंडइ व्रत-भार ॥६०॥

॥ दूहा ॥

वीरवचननिं जाणतो सकल भाव समझेह ।
अस्यो साध बहु पूरषना बहुअ वचन खमेह ॥६१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न चल्यो नवी कोप्यो तही भषइ जाम सीआलि ।
अहो अहो दूखर करइ अवंती ज सुकमाल ॥६२॥
श्रावक दूखर देख्य करि तुठो सुरवर सार ।
खुसी थईनिं आपतो मणिमइ कुडल च्यार ॥६३॥
श्रावक सोय मीथलां गयो मल्यो कुभनिं मानि ।
कुडल दो तीहा दीइ घाल्या मली कानि ॥६४॥
श्रावक त्याहाथी संचर्‌यो आव्यो चंपामाहि ।
अंगरायनिं ते मल्यों कुडल आप्यां त्याहि ॥६५॥
भूपिं साहा संतोषीओ पूछी अचरीत वात ।
कहइ मली कुमरीतणुं दीठू रूप वीख्यात ॥६५ । (६६)॥
नारि ध्यननिं कारणिं जण जो णासो जाय ।
सुणी भुप विवल हुओ दुत पाठवइ राय ॥६६ । (६७)॥

॥ चोपई ॥

एणइ अवसरि कुंणाला राय रूंषी(पी) भुपना सहु गुण गाय ।
नारी धारणी तेनिं कही बिटी सबाहु सुदर लही ॥६७ । (६८)॥
वरसगाठि दिन पुत्रीतणो घरि ओछव तव माड्यो घणो ।
पूत्रीनिं शणगारइ माय खोलइ बइसारइ तव राय ॥६८।(६९)॥
पूछइ सवी स्यभा ते मांहिं अस्युं रूप दीठुं कुणिं क्याहि ।
बइ करजोडी बोल्यो दूत मलीरुप जगम्हा अदभुत ॥६९।(७०)॥
नारी अंब ईखुरस वाढ वातिं नरनी गलती डांढ ।
रूपिराय हुई ईच्छया घणी दूत मोकल्यो मीथला भणी ॥७०।(७१)॥
मलि कानिं कुडल हवइ दोय साधि उंषडी तेहनी जोय ।
सोनीनिं तेडइ तेणइ ठाय मेल्यों साधि कहइ कुभराय ॥७१।(७२)॥
एनी साधि मेली नवी जाय कोहो तो नवा नींपाईइं राय ।
एणइ वचने खीयो भुपाल पूर बाहिर काढ्यो समकाल ॥७२।(७३)॥
शंखराय कइ आव्या तेह भाख्युं वीतक हुतुं जेह ।
रूप वखाणुं मली तणुं वातिं मोह्यो राजा घणुं ॥७३।(७४॥
धन नारी परनंद्या मान न दीइ त्याह जोगेदर कान ।
बीजानुं मन न रहइ ठामिं दूत मोकल्यो मली कामि ॥७४।(७५)॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वली अधीकार सूणो नरजन मली भ्रात छइ मली दीन ।
चीत्रशाल क्रीडानो ठाम आव्यो नर मलपंतो ताम ॥७५।(७६)॥
मली बिहइनिनुं दीठू रूंप नरखी पांछो वलीओ भुप ।
मनि लायो कही आव्यो अही त्यारइ धव्य बोली वली तही ॥७६।(७७)॥
ए मलीनो हइ, लुघ भुप(?) ए मलीकुमरीनुं रूप ।
सुणता खीयो सोय कुमार कुण चीतारो एह गुमार ॥८८।(७८)॥
अणतेड्यो आव्यो क्यम आहि मली रूप नरख्युं तेणइ क्याहिं ।
आणो बाधी आणइ ठामि राखो जीवतो ते कुण कामि ॥७८।(७९)॥
आण्यो बाधी नर ततकाल करइ वीनति सूण्य भुंपाल ।
मली तणो देखी अंगुष्ट लख्यु रूप थयो जख्य तुष्ट ॥७९।(८०)॥
लखी रूप देखाडइ तही रायरोस ऊतरीओ नही ।
संडासो छेदाव्यो त्याहि चीतारो कोप्यो मन माहि ॥८०।(८१)॥
वण ऊपराधि दीधी डंड करइ राय क्यम एह अखंड ।
जख्य आराध्यो जई बहु भाति वर दीधो तव डाभइ हाथि ॥८१।(८२)॥
मली तणुं पटी लख्युं सरूप भेट्यो अदीनस्यत्रु भुप ।
पट देखाडी उंभो रह्यो राजा तव कामातुर थओ ॥८२।(८३)॥

शलोक - ॥

कामारथी तस कीतो लया मंश-आहारी तश कीतो दया ।
मदिपानी तस कीतो सउच दारद्री तस कीतो कीया (?) ॥८३।(८४)॥

दूहा ॥

कामारसिं राजा हुओ दूत पाठवइ त्याहि ।
छठो दूत हवइ आवतो सुणो कथा कहुं आहिं ॥८४।(८५)॥

ढाल ॥

कान वजाडइ वासली ।

कथा कहु मली तणी जस गुण ब्यहु होय ।
एक वार एक तापसी त्याहा आवी जोय ॥८५।(८६)॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंमरी सूधी श्राव्यका तस नवी बोलावइ ।
चरचा कीधी धर्मनी तव ते दूख पावइ ॥८६।(८७)॥
हरीहर भ्रह्मा थापती सीतापती राम ।
जग सघलइ वापी रह्या परमेश्वर नाम ॥८७।(८८)॥
मली कहइ सुणि तापसी जो सघलइ सांई ।
अस्युच वस्तम्हां ते थयो एम न मलइ कांई ॥८८।(८९)॥
जो सहुनइं सांईइं घडयां शा न्हाना मोटा ।
एक सुखीआ सरया कसइं एकनइं नही रोटा ॥८९।(९)॥
ईसिं नारि न ओलखी वर आपी भागो ।
सुतमुं सीस वडारीउं शिरि हाथ्य न लागो ॥९०।(९१)॥
बली द्वारिकां कहाननी गोपी लुटाई ।
बालिक परि बाली तणां चीवर लेई जाई ॥९१।(९२)॥
ए परमेस्वर ताहरो मुझ जीनवर देवो ।
अनंतज्ञान नारी नही सूर करतां सेवो ॥९२।(९३)॥
करता थापइ करमनिं तु न लहइ मरम ।
मानभ्रीष्ट थई तापसी काई न रही शरम ॥९३।(९४)॥
द्वेष धरी त्याहा चीतवइ जोगिणि धुतारी ।
हुं परणावुं एहनिं ज्याहां होइ बहु नारी ॥९४।(९५)॥
चोखा क्यंपिलपुर्‌य गई यतशत्रु राजा ।
सहइस नारि तेहनिं धरी ब्यहुत दीवाजा ॥९५।(९६)॥
चोखा नृपनिं जई मली नृप दइ बहुमान ।
अंतेवर देखाडीओं पुछई देई दान ॥९६।(९७)॥
अंतेवर आवुं वली तिं दीठुं क्याहि ।
मुखिं मरकलडो मुकती हसती मन मांहि ॥९७।(९८)॥
नालीद्वीपना मानवी भखि श्रीफल त्याहि ।
एह व्यनां मनि चीतवइ नही खावुं क्याहिं ॥९८।(९९)॥
त्यम तुं राजा चीतवइ अंतेवर सारूं ।
असी नारि क्याहिं नही ध्यन जीवत म्हारूं ॥९९।(१००)॥

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

पणि मली स्त्री आगलिं अंतेवर हारइ ।
ते नारि तुंझ धरि नही तो स्यु छइ त्याहरइ ॥१००।(१०१)॥
सूणता ईछ्या उंपनी नृप कर्‌यो वीचार ।
एक अद्‌भुत नारी भली मुझ कसी हजार ॥१०१।(१०२)॥

कुडलीओ ॥

राय कहइ पटणि रहीइ कइ वनमांहि वास ।
एक मित्र राजा भलो कइ जोगीनो दास ।
कइ जोगीनो दास एक वरि सूदर नारी ।
कइ दरि लीजइ जाय छत्र एक कइ व्यापारी ।
सोईइ सोवन-ढोलीइ कइ भुडी भोमिज ग्रहीइ ।
मंदीर केअ मसाण, राय कहइ पटणि रहिइ ॥२।(३) ॥

॥ चोपई ॥

वसीइ म्होटा नगर मझारि धरणि तोह अनोपम नारि ।
अस्यु चीतवी राजा त्याहिं दूत पाठव्यो मीथलामांहि ॥३।(४)॥
छइ दुत मल्या तेणइ ठाय समकालिं वीनवीओ राय ।
पुत्री मागइ जुजूआ राय कुंभरायनइं चढ्यो कषाय ॥४।(५)॥
वर कन्यानिं मागइ जेह अधम पूरष जगि कहीइ तेह ।
काढी मोकल्या सघले दूत छइ रायनिं वलगां भुत ॥५।(६)॥
हडसेल्या हाक्या दूतडा वल्यां सोय भइरव भुतडा ।
पोताना राजानिं मलइ करइ वात घणु कलकलइ ॥६।(७)॥
नरपति नारि कथा मुकीइ कन्यानही पणि गाल्यो दीइ ।
छइ दूतनिं कर्‌या फजेत नवि साखइ नर जेह सचेत ॥७।(८)॥
सुणि वचन नृप खीया त्याहि दूत मोकल्या माहोमाहि ।
आपणि जावुं मिथला भणी कुभ तणइ करस्यु रेवणी ॥८।(९)॥
कटीक सज छइ त्याहा करइ मीथला उंपरि ते संचरइ ।
आवी वीट्यों नगरी-कोट कुंभराय परि देता डोट ॥९।(१०)॥
कुंभराय करइ संग्रांम छइ राय दल झूझइ ताम ।
वढता कुभ न चांलइ जसिं भंडी पोलि गढम्हा रह्यो तसिं ॥१०।(११)॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीटी कोट रह्या षट राय आकल-वाकल सहु को थाय ।
ईधण पाणि जोईइ अन किम रहइ थीर लोकोनां मन ॥११।(१२)॥
कुभराय संकटमां पडइ धरि धीर्य साहामो नवी भडइ ।
लाजइ मुख देखाडउ नही ख्यत्रीनिं लया छइ अही ॥१२।(१३)॥
वाणिग वायदइ लया थाय दाता लज कुण भुख्यो जाय ।
पंडीत लाज ऊतर नवी थयो ख्यत्री लया न्हासी गयो ॥१३।(१४)॥
कुभराय शंकाणो जसइं मली बुधि वीमासइ तसइं ।
पीता तणइ कहइ म करो खेद च्यंता हवडा करस्यु छेद ॥१४।(१५)॥
दूत मोकलो विरीं कनिं आवे पूत्री देस्यूं तनिं ।
एक एक मानवी जाणइ जेम छइ तणइ कहइ वरीवो तेम ॥१५।(१६)॥
दूत मोकल्यो मन ओहोलासिं अ(आ)व्यो नृप विरीनिं पासि ।
कह्युं तुम्यो छाना आवज्यो मलीनिं परणी जाअज्यो ॥१६।(१७)॥
छइ तणइ छानुं एम कह्युं परणेवा मनडुं गहिगह्युं ।
को कोहोनिं न जणावइ वात रातिं छइ नगरम्हा जात ॥१७।(१८)॥
कुभरायनिं मलीआ त्यांहिं छइ नइं घाल्या ओरडामाहिं ।
परभातिं उंठइ नरभुप नरखइ मली प्रतिमारूप ॥१८।(१९)॥
देखी हरखइ हईआ मझारि एवुं रूप नही संसारिं ।
नागकुमारी कइ क्यंनरी वीद्याधरी कइ सूरसूदरी ॥१९।(२०)॥
ए कन्या वरसइ जो आज जाणुं पाम्यो त्रीभोवन राज ।
एम चीतवता सघला राय मली कुमरी परगट थाय ॥२०।(२१॥
मलीरूप दीठु जेटलइ प्रतीमारूप घट्युं तेटलइ ।
हंसगति हींडइ काम्यनी चंदमुखी सुदर भाम्यनी ॥२१।(२२)॥
मृगनयणीनिं कुडल कानिं चीत्रालकी नीलइ वानिं ।
सोवनमेखला नेवर पाय देखी चकीत थया त्याहां राय ॥२२।(२३)॥
ज्यारइ रागी हुआ घणुं ऊघाड्युं प्रतिमा ढाकणुं ।
दूरगंध गंधमाहिंथी उंछलइ छइ राय तव पाछा टलइ ॥२३।(२४)॥
भोगी छइ सुगंधी सदा दूरगंध माहिं वशा नही कदा ।
अकलाणा दइ पाछा पाय मेलां एगठा सघलां राय ॥२४।(२५)॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करो दूगंछा का तम्यो राय ए तो छइ सोवन प्रतिमाय ।
अमृत आहार करूं हुं जदा एक कवल देउं प्रतिमा तदा ॥२५।(२६)॥
तेणि गंधि तुम पाछा खसो चरम शरिरिं किम ओहोलसो ।
शरीरबंध हुउं सातइ धाति सुणो सोय नर ऊत्म जाति ॥२६।(२७)॥
रस लोही माटी निं मेद असथी मंजा शक्रसु भेद ।
एणइ सातिं बंधाइं देह ऊत्म त्याहा क्यम धरइ सनेह ॥२७।(२८)॥
चरम-कोथली माहिं हाड नरनिं दूरगतिं पडवा खाड ।
नथी पूरषनो वाक लगार मोहिं कीधा जाण गुमार ॥२८।(२९)॥
जेनिं मोह ल्यख्यमीनो घणो छलिं करी द्रव्य लइ परतणो ।
जेनिं मोह घणो नीजकाय ते परजीव हणीनिं खाय ॥२९।(३०)॥
जेहनिं मोहो नारि उंपरि लया अलगी मुकइ धरिं ।
करी जाचना बल करी वरइ जोगी थई स्त्री पुंठि फरइ ॥३०।(३१)॥
जाणइ सारम्हा सार छइ एह पणिं ए सबल दूगंधि देह ।
ऊपरि सुदर, माहिं असार जशो चीतर्‍यो ठंडील ठार ॥३१।(३२)॥

॥ दूहा ॥

अभ्यंतर वीष सम जाणीइ बाहइरि अमृत उंदार ।
गुजा-फल सम जाणवा स्त्रीना भाव वीकार ॥३२।(३३)॥
मीडानी परी वाटली राखडी राखी म जोय ।
नारी शिरि दीवो धरइ दूरगति पडवा तोय ॥३३।(३४)॥

गाथा ॥

जलकी भीति पवनका थंभा देवल देखी हुआ अशंभा ।
बाहइरि भीतरि गंध दुगंधा तो कां भुलो मुरिख अंधा ॥३४।(३४)॥

॥ दूहा ॥

कामभोग वीषशल समा वंछि सुखनी हाणि ।
मल्ली कहइ नर सेवता लहीइ दुरगति खाणि ॥३५।(३६)॥
ईसिं आगममाहा कह्युं ते अदीका संसारि ।
छता भोग छाडी करी नीज मन आणइ ठारि ॥३६।(३७)॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कशा भोग मानव तणा भोग भला सुरमाहिं ।
तीहइ भोग तुम भोगव्या तोहुं भुख्यां तुम आहि ॥३७।(३८)॥

॥ चोपई ॥

आणइ ठामिं तुम ईछो भोग जो तुम पाम्या सुर संयोग ।
बत्रीस सागर न्युन्य काई आय एक हाथ सुदर यहो काय ॥३८।(३९)॥
काम कुचेष्टा ज्याहाकणि नही सुखभरि काल गमाडइ तही ।
साह्यबि सेवक नहि तेणइ ठारि माखण सरखो फरस वीचारि ॥३९।(४०)॥
पाचे विमानिं उंपजइ जेह ससलवी सुर केता तेह ।
ज्ञाति लवनु अदीकुं आय तो ते देवता मुगतिं जाय ॥४०।(४१)॥
पंचम विमानिं उंपजइ जेह एक अवतारी होइ तेह ।
च्यार विमानमाहिं अवतरइ भव संख्याता ते पणि करइ ॥४१।(४२)॥
पाच विमान निं नव ग्रीवेय्य वचनवाद तीहा नही रेख ।
लेशा एक सकल छइ सदा ते मृतलोक्य न आवइ कदा ॥४२।(४३)॥
अनुंतर पाच विमानिं जोय चोसठि मणनां मोती होय ।
बीजइ ठामिं कुभप्रमाण नादिं लीणा रहइ सुर जाण ॥४३।(४४)॥

॥ ढाल ॥
॥ तो चढीओ घन मान गजे ॥

सुरना सुख छइ अती घणा ए मनमां च्युंत्यु थाय तो ।
रयण विमान छइ स्यास्वता ए काल सुखिं त्याहा जाय तो ॥४४।(४५)॥
रूप सकोमल तेहनां ए अतिहिं सूगंधी देह तो ।
केस मुछ डाढी नही ए तेजपूज सुर तेह तो ॥४५।(४६)॥
रुधीर चर्ब नस नख नही ए रोम-रहीत तन जोय तो ।
परसेवो अंगि नही ए रोगरहीत तन होय तो ॥४६।(४७)॥
जरा न आवइ देवनिं ए सूखीआ लीलवीलास तो ।
मधुर वचन मुख्य बोलता ए सखरी सास उंसास तो ॥४७(४८)॥
बत्रीस सहिस वरस ज गइं ए होइ आहार ईछ्याय तो ।
सोल मास गया पछी ए सास उंसास ज थाय तो ॥४८।(४९)॥
त्रणि ज्ञानना तुम धणी ए पूरविं सुर अवतार तो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छइ मंत्र पूरविं सही ए सातमो हुं नीरधार तो ॥४९।(५०)॥
माया-तपिं थयो सुदरी ए तुम नरना अवतार तो ।
देव ववेक तुम क्याहा गयो ए ईछो भोग असार तो ॥५०।(५१)॥
सुणी वचन नृप लाजीआ ए अहीआपोह करेह तो ।
जातीस्मरण पामीआ ए सुरनो भव देखेह तो ॥५१।(५२)॥
सुरनां सुख संभारता ए कहइ धीग मानवदेह तो ।
उशभ भोग नारी तणा ए फोकट भोगव्या एह तो ॥५२॥(५३)
मानव भोग अम वोशरे ए ईछुं नही सुरलोक तो ।
मुगति तणां सुख आगलिं ए सघलां सुख छइ फोक तो ॥५३॥(५४)
अम्यो बुडा संसारमां ए काढ्या मलीइं आज तो ।
चरणे सीस नमावता ए नही राजनुं काज तो ॥५४॥(५५)
मलीकुमरीइं कर ग्रहीए आण्या पीतानिं पाश तो ।
चरणे नमीआ नृपतणइए वसस्युं संयम वाश तो ॥५५॥(५६)
कुंभ पीता हरख्यो घणुं ए मली बुधि परमाण तो ।
मोहोत वधारयुं महीअलिं ए बुझव्या पुरुष सुजाण तो ॥५६॥(५७)

॥ चोपई ॥

छइ पूरष त्याहा बुझ्या सही कहइ दीख्या लेस्यु गहइगही ।
मली कहइ देउं वरसीदान धरस्यु छेढइ संयमध्यान ॥५७॥(५८)
जाओ मंत्र घर तुम छइ जही वरस पछी आवेज्यो अही ।
दीख्या लेस्यु मंत्री सात मोछव करसइ माहारो तात ॥५८॥(५९)
सूणी वचन राजा गया जाम नव लोकांतिक आव्या ताम ।
बुझी बुझी मली भगवंत लेई संयम तारो जगजंत ॥५९॥(६०)
सुणि वचन जिन देता दान एक कोडि अठ लाख नीध्यान ।
सवा पोर लगइं जिन देह भवि जीव व्यनां नव्य लेह ॥६०॥(६१)
मणि मोती आपइ दोकडा ल्याहारी रूपईआ रोकडा ।
गज रथ घोडां भूषण देह लेतां लेनारा थाकेह ॥६१॥(६२)
वस्त्रदान दीइ दातार उजल मुख करतो आवकार ।
हईडइ हरखी आपइ दान, नाचंता मांडि जिन कान ॥६२॥(६३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ दूहा ॥

गजवी घोर तडका थकी कजल हुई मस्य वन ।
एणी परि लाई बापईआ जलोंते जलधर दीन ॥६३॥(६४)
कालमुह करी वंकमुह रतडमुह करी जास ।
तेणइ दीनि ए कवण गुणयु फल दीइ पलास ॥६४॥(६५)
रीषभ कहइ धन क्यरपीआं अंतिं अवधि जाय ।
अंधवणइ उंतावलो चगलइ काली गाय ॥६५॥(६६)
बापईडो जल रोई मगइ बिंदु न न लहइ तेणइ ठारि ।
मरूदेसे मेहे चीतवइ पडि आसुं पीउं वारि ॥६६॥(६७)
मरूदेसे नर चालीओ तरु देखी ते धाय ।
दूम तपंता चीतवइ आवइ करइ अम छाह्य ॥६७॥(६८)
तरशो लुक्यो नर धशो देखइ नईनुं तीर ।
नई च्यंतइ परसेवथी ताढूं होय शरीर ॥६८॥(६९)
भोज कहइ स्युं जनमीओ जाचीक दूबल अंग ।
ते कहइ ऊदरिं स्यु धरयो करइ जाचना भंग ॥६९॥(७०)
भोज-परीक्षा-कारणिं आव्यो पंडीत एक ।
एक घर लेई नीकल्यो कहइ मुरिख अववेक ॥७०॥(७१)
जग सघलो जाच्यो फरी ठेल्यो जोई कपाल ।
भोज अख्यर नवी वाचतो दीइ दान भुपाल ॥७१॥(७२)
वाको वह(हा)लो नारिनइं श्रोता पंडीत लग ।
धीगट वाहालो शाक्यनी दाता वह(हा)लो जग ॥७२॥(७३)

॥ ढाल ॥

हु ज अकेली । नीद न आवइ रे ॥
जगनिं वाहालो मली जीणंदो रे । जगनिं कीधो अती आनंदो रे ।
धनंद समा कीधा जन त्याहिं रे ।
नारी न ओलखिं नीजघरमांहि रे ॥७३॥(७४)
यम करइ पूरषा अत्यहिं अपारो रे भोलि ! हुं ताहारो भरतारो रे ।
मली दइ ॰होमाग्युं दानो रे तेणइ वलीआ अम देही वानो रे ॥७४॥(७५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरखी नारि दि आसीसो रे मली जीवयो कोडि वरीसो रे ।
षासर पिहइरतो मुझ भरतारो रे तेणइ कीधो सोलइ शणगारो रे ॥७५॥(७६)
मारि साडलइ साधा त्रीसो रे पिरूं पटोलां हवइ नसदीसो रे ।
पिहइरणि काचली गलीइं बोली रे हवइ हुं पिहइरू नवरंग चोली रे ॥७६॥(७७)
जाडा चरणीआ नि मशवरणा रे पिहइरूं पाच पटाना चरणा रे ।
चोला बरटी खातां तेलो रे साली दलि हुई हवइ घृतरेलो रे ॥७७॥(७८)
सांठी झूंपडां माहां शो वासो रे रहिवा लीधा सखर आवासो रे ।
शला खाटला माकण आला रे आण्या ढोलीआ सोवनथाला रे ॥७८॥(७९)
पिहिरइ भूषणनि आभर्णो रे जाचिक जननो वलीओ वरणो रे ।
जिन नमिं हुओ जग आनंदो रे वरसीदान दइ मली-जिणंदो रे ॥७९॥(८०)
दीख्या-अवसर हुओ यारइ रे छइ राय आव्या नर त्यारइ रे ।
आल्यां नीज ब्येटानि राजो रे पोतइ सारइ आतमकाजो रे ॥८०॥(८१)

॥ ढाल ॥

॥ बइठो नायक त्याहि ते सबल हरखी ॥ राग-देसाख ।

आतम काज सारइ जिन मलीनाथो आवइ अंद्र अंद्राणीअ देव साथो ।
स्यणगारतो नगरीअ नगरनाथो केसर चंदन छांटणां त्याह थातो ॥८१॥(८२)
मली दीक्ष लेता ॥ आचली ॥

भंभा भेरीअ नाटीक सबल थाइ
सुर गाद्रप देवता त्याह गाइ ।
मली मस्तगि खुप ते तव भराइ
जयंती शबकां त्यीहा सज थाइ म० ॥८२॥(८३)
शबकामांहि बइसतो मलीनाथो
दीइ कुंभना(?) मानव त्याह हाथो ।
पछइ अंद्र सुर सीबीकानि खंधि लेता
चाल्या पुरुष जिन मल्यनी सूति(स्तुति) करेता ॥म०॥८३॥(८४)
गज अस्व रथ पालखी पूठि चालइ
धज चामर छत्र नर सोय झालइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कनक-कलसला मसतगि धरइ ज नारी
जन बोलता वाणीअं अत्यहिं सारी ॥म०॥८४॥(८५)
डंडा रस पात्र खेला ज खेलइ
बहु पूरष साथिं मीथला मेहेलइ ।
सिहिश्रावनमांहिं स्वामी ज आवइ
दीख्या कारणिं ऊतरी सज थावइ ॥म०॥८५॥(८६)
अशेख विरख तली आवियो मलीनाथो
नीज मस्तग ऊँपरिं धरत हाथो ।
पंचमुष्ट करतों जिन वन माह्यों ।
मागशर शुदि एकादसी अत्याह्यो ॥म०॥८६॥(८७)
अठमतप पचकता मलीनाथो
पूठइं त्रणिसहिं पूरषनो होय साथो ।
प्रथम वइ चारीत्र त्यांह लीधुं
खीरिं पारणु मीथलांमाहि कीधुं ॥८७॥(८८)
अश्वसेन घरि पारणुं सोय थाइ
पंचदीवस्यु दुदभी देव वाहइ ।
गुणग्राम दातारना देव गाइ
वीश्वसेन त्रीजइ भवि मोक्ष जाइ ॥
दाता मोक्ष होई ॥आचली ॥८८॥(८९)
मोटो दान-महीमाय ते कह्यो न जाइ
कर्ण कृष्णनिं वीक्रमो भोजराइ ।
हरीचंद बलि जाचतां दरीद्र जाइ
जस जेहनो आज अदीको गवाइ ॥दाता०॥८९॥(९०)
दानिं दरीद्रपणुअ ते अवश जाइ
हिहीषता हाथीआ घरि बंधाइ ।
छइ खंडनो राय ते आप थाइ
छत्ररत्न सिर उंपरिं सही धराइ ॥दा०॥९०॥(९१)
नर पायका कोडि आगलउं जाइ
गुण जाच्यका पंडीता सोय गाइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलावंत ते जोत्यस्यु जंत्र वाहइ
भइरवराग कल्याण निं नट थाइ ॥दा०॥९१॥(९२)
चापेल चापि अनिं तुझ चोलाइ
करइ खाडनी खइलनिं पूरष नाहइ ।
लुवा आणता अतलस बलीअ लाहइ
ढोलि बीजणउ भीअ नारिवाइ (?) ॥९२॥(९३)
वसत्र भुषणइं वाधती नर सोभाइ ।
दूध साकर कढी अनिं सुभट पाइ ।
बइठो मालीइ सुखडी सखर खाइ
चावइ पान कपूर कफ कहीइं न थाइ । दा० ॥९२॥(९४)
सदाकाल ते सुखभरिं सोय जाइ
आण्यां सोवन ढोलीआ नर सुवाइ ।
तलाई तेणइ गलगली दीलि थाइ
चापइ पध्यमनी पुरुषना सोय पाइ ॥दा०॥९३॥(९५)
चंदन केसर घसी अनिं अंगि लाइ
मोटा मोहोत आपइ छत्रपतीअ राइ ।
अंद्री नीरमल रूपनिं दीरघ आइ
घरि दूझती महइ खीआ सुंदर गाइ ॥दा०॥९४॥(९६)
भव चढत चढता नर तास जाइ
हरि चक्रधर ईभ नर सोय थाइ ।
अस्यो दानमहीमा कहइ जिनराइ
वीश्वसेननी सीधगती सोय थाइ ॥
दाता मोक्ष होई ॥९५॥(९७)

॥ दूहा ॥

मुगति पंथ दाता लहइ जिनवर दान पसाय ।
ज्याहा ज्याहां होइ प्रभु पारणुं दुंदभी नाद ज थाय ॥९६॥(९८)

॥ ढाल ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ चालि-चतुर चंद्राननी ॥

थाय आनंद ते अतीघणो मली धरत शुभ ध्यान रे ।
तेणइ दीन त्याह उंपाईउं भलुं केवलन्यांन रे ॥९७॥(९९)

दीइ जानवर तीहा देसना ॥ आचली ॥

समोसर्ण सुर त्याहा रचइ मली परषदा बार रे ।
मली जिणंद दीइ देसना धर्मभेद कहइ च्यार रे ॥दी०॥९८॥(२००)
दान निं सील तप भावना आराधे सहु कोय रे ।
दसवीधि धर्म यती तणो व्यवरी कहइ सोय रे ॥दी०॥९९॥(२०१)
साध ख्यमा धरइ अती घणी आरजवपणुं अ अपार रे ।
मान निं लोभ दुरिं करइ तपभेद कहुं बार रे ॥दी०॥२००॥(२०२)
संयम सती राखइ सदा आतम नीरमल हाडि रे ।
कोडी एक राखइ नही भ्रह्मवरत नव वाडि रे ॥दी०॥१॥(३)
जल माटी नवि चापीइ वीगइ नही नरच्यार रे ।
आप वखाण नंध्या नही नही पाप व्यापार रे ॥दी०॥२॥(४)
मुड मुडाव्यु तिं वली जो मुगतिनइ कामि रे ।
नारी सहु माता जसी मन राखजे ठामि रे ॥दी०॥३॥(५)
वार्टि वात न कीजीइ कथा परहरी च्यार रे ।
ईछ्या मन रूधे मुनी लेजे नीरस आहार रे ॥दी०॥४॥(६)
डंभ आडंबर म म करे बाजी टोलि तजि हाश रे । (?)
नीमताने मुल मंतर कही (?) वसइ दुरगति वाश रे ॥दी०॥५॥(७)
आस तजे परब मोहोछवि म म रहइ एक ठामि रे ।
जोह मस्तग मन मुडीउं नीज आतमा कामि रे ॥दी०॥६॥(८)
सार असार लुखु वली पेट भरीअ म खाय रे ।
आलि भाडुं नीज देहनिं यम चाल्युंअ जाय रे ॥दी०॥७॥(९)
उंखाल पुखाल धोवुं नही राति रखि म म खाय रे ।
दीवश नीद्रा रखे तु करइ लीधी जोह दीख्याय रे ॥८॥(१०)
सीद वधारतो रोमनि ऊपाडइ कस्यु सावरे ।
मुगती नोहि तुझ त्याहा लगइ नावइ जव्य समभाव रे ॥दी०॥९॥(११)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मींहीं कपडा नहु पिहइरणा नासइ दुरि याहा नारि रे ।
याहा दुख पामइ आग्यलो न रेवु तेणइ ठारि रे ॥दी०॥१०॥(१३)
बाहिरि भीतरि रहइ ऊजलो गुण ढाकतो आप रे ।
गुण बोलइ नर अवरना तजइ थोडुइ पाप रे ॥दी०॥११॥(१३)
सधइणा नही धर्मनी अन्य दइ ऊपदेस रे ।
बुझवी मोख्यमा मोकलइ पोतइ नरगि परवेस रे ॥दी०॥१२॥(१४)
ताढि तडको खमइ मन व्यना आपइ आहार सहु कोय रे ।
मुरिख ए मन चीतवइ एथी दुरगति होय रे ॥१३॥दी०॥(१५)
जिन कहइ कपट माया तजी करो साधन सोय रे ।
मुगति देसइ तुझ आतमा दुजो नही कोय रे ॥दी०॥१४॥(१६)

॥ ढाल ॥

गुरु गीतारथ मारगी जोता सूणी देसना जीनवर केरी ।
लि नर बहु दीख्याइ मलीनाथनि प्रथम समे(मो)सर्णि ।
संघ थापना थाइ ॥ हो जीनजी ।
मीठी मधुरी वाणी । आचली ॥१५॥(१७)
भीसम परमुख्य मुनीवर मोटा, गणधर अठावीस ।
साध भलेरा संयमधारी संख्या सहिस च्यालीस । हो जीनजी०मी० ॥१६॥(१८)
साधवी बंधमती जे परमुख पंचावन हजार ।
एक लख्य त्राहासी सहइस भणीजइ श्रावकनो परीवार ॥१७॥(१९)
त्रण लख्य सात हजार श्रावीका चोथो शघ सुसारो ।
बावीस सहइं जस केवलन्यांनी मलीतणो परीवार हो जी० ॥१८॥(२०)
मनपर्याय मुनीस्वर मोटा सतरसहिं पंचास ।
बावीस सहिं जस अवधिज्ञानी हुं तस पगले दास ।हो जी०॥१९॥(२१)
छ सहिं अडसठी पूर्वधर पेखो चउंद सहिं वादी मान ।
सहिं ओगणत्रीस मुनीवर मोय वईकरी लबधी-नीध्यान होजी०॥२०॥(२२)
सहिस अठावीस आठ सहइ चोपन सेष साध नीत्य वंदु ।
च्यालीस सहिस प्रतेकबुध हुआ नमिं नीत्य आनंदु ।होजी० ॥२१॥(२३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजुप्रज्ञा मुनी एनिं कहीइ (होइ) वरत धरइ ते च्यार ।
पंचवरण चीवर वण मानिं सचेलकलप नर सार हो जी ॥२२॥(२४)
बि प्रतीक्रमण कह्यां जिनशाशनि दूषण लागिं करता ।
घणो काल रहइ मुनि एक थलि दोष लही रहइ फरता ॥२३॥(२५)
मलीइं नव तत्त्व प्रकाशां त्रीण तत्त्व पणि भाख्यां ।
सतरभेद संयमना भाख्या च्यार सामाईक दाख्यां हो जी० ॥२४॥(२६)
आवश्यक षट जीनशासनमाहिं धर्मभेद कह्या चार ।
दोय भेद धर्मना कहइ तो श्रावकनां व्रत बार हो जी० ॥२५॥(२७)
चारीत्र त्रणी कह्या तेणइ थानकी आठ मास तप सार ।
ऊपकरण जिन सोय प्रकासइ जीनकलपीनिं बार । होजी० ॥२६॥(२८)
थीवरकलपनिं चऊद प्रकाशां अजीआनिं पचवीस ।
अस्यो पंथ प्रकासइ स्वामी व्याहार करइ जगदीस हो ॥२७॥(२९)
देवदुक्ष एक लक्ष सोवननुं सदाकाल ते होई ।
ऊपसर्ग नही ए त्रीननिं एकुं परमादकाल न कोई । होजी० ॥२८॥(३०)
अढार दोष नही जीन पासई वाणी गुण पातीस ।
प्रातीहार आठइ नीति होई अतीसहि जस चोतीस हो जी ॥२९॥(३१)

॥ ढाल ॥

॥ तुगीआगिर सीखरि सोहइ ॥ (राग परजीओ) ॥

चोतीस अतीसहि मल्ली केरा प्रथम रूप अपार रे ।
स्वेद मल नही रोग अंगि देह सुगंधी सार रे ॥३०॥ (३२)
चोतीस अतीसहइ मल्ली केरा । आचली ।

सास निं ऊसास सखरो ऊजल आमिष सार रे ।
रूधीर जिन गोखीरधारा अद्रीष्टि आहार नीहार रे । चो०॥३१॥(३३)
कोडाकोडि सुर मनुं पसुआ जोयनमाहिं समाय रे ।
वाणि जोयन लगिं सुणीइ बुझइ सुरनर गाय रे ॥चो० ॥३२॥ (३४)
भामंडल जीन पूठि प्रगट्युं रविमंडलथी सार रे ।
जोअण सवासो लगइ भाई रोग नही ज लगार रे ॥चो०॥३३॥(३५)
वइरवीरोध नही मानुवमनुमा बइसइ गज निं गाय रे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सातइ ईत माहां नहीअ कोए मारी मरगी जाय रे ।।चो०।।३४।।(३६)
अतिवृष्टि अनावृष्टी नही जगि दुरभख्य रे ।
भि नही स्वचक्र-परनो श्रीजिनगुण तुझ लख्य रे ।।चो०।।३५।।(३७)
धर्मचक्र आकाशि चालइ चामरधर सुर ईस रे ।
रत्न सीघासण पादपीठो छत्र त्रणि तुह सिस रे ।।चो०।।३६।।(३८)
ईद्रध्वज आकासि उंचो कमल नव जिन पाय रे ।
रूप कनक निं रत्नमणिमिइ रचइ गढ सुर राय रे ।चो०।३७।।(३९)
समोसरणि चोरूप सुदर अशोखतरूअ भजंत रे ।
अधोमुख ते कहुं कंटीक सकल वीरख नमंत रे ।चो०।।३८।।(४०)
दुदुभी आकाशी वाजइ अनकुंल वाइ वाय रे ।
परदक्षण पंखीआ देता शुकन बोलंता य रे ।। चो०।।३९।।(४१)
गंधोदक होइ पुफवीष्टी पंचवर्ण फूल रे ।
देव ढीचण लगइ रचता जोअण एक असुल रे ।चो०।।२४०।।(२४२)
डाढी मुछ नख केस न वधइ अणहुतइ सुर कोडि रे ।
रति छइ अनकुल इंद्री नमु जिन कर जोडि रे ।।चो०।।४१।।(४३)

॥ दूहा ॥

अतीसहइ बहु जनवर तणा मल्या देह शुभ अंश ।
काशप गोत्रे उंपनो ईक्ष्याग जेहनो वंश ।।४२।।(४४)

॥ चोपई ॥

वंश वेडी मलि जिनराय सुरगति पामइ मातपीताय ।
महिंद्र देवलोंक चोथुं य्याहि सुरनां सुख भोगवतां त्याहिं ।।४३।।(४५)
कुबेर जक्ष जिन सेवइ पाय वेरुट्टा जक्षणी गुण गाय ।
ए श्री जिनवरनो परीवार जिन करता जगनिं उंपगार ।।४४।।(४६)
विहार करंता आवइ त्याहि समेतशखर परबत छइ ज्याहि ।
मास एक अणसण आदरइ काओत्सर्गमुद्रा जिनवर धरइ ।।४५।।(४७)
फागण शुदि बारसि दीन जसिं मोक्ष पहुता जिनवर तसिं ।
पंचसहिं मुनीनो परीवार मुगतीपूरी-गढ पाम्यां सार ।।४६।।(४८)
जनम जरा मरण ज्याहां नहीं रोग शोग भि भुख न तही ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचवरण काया नही रूप ज्ञानिं नरखइ सकल सरूप ॥४७॥(४९)
अनंत सुखमाही झीलइ तेह ते सुखनो नवि आवइ छेह ।
अझरामर पडवुं नही कदा अनंतु बल दरसण छइ सदा ॥४८॥(५०)
एहेवुं सीधपणुं जव थाय चोसठि इद्र आव्यां अही धाय ।
नीरवाण मोहोछव करता देव काया दिहइन करइ ततखेव ॥४९॥(५१)
सीबका एक चंदननी करइ सनान करावी जिननिं धरइ ।
बिसारि चंदन चोपडइ मोहिं सुर देवी त्याहा रडइ ॥५०॥(५२)
वायत्र वागति लेई जाय चीता रची छइ जेणइ ठाय ।
जिननिं पोढाडइ पगि लागि अग्यनकुमार मुकंता आगि ॥५१॥(५३)
वायंकुमार वाइरो करइ केसर चंदन अंबर धरइ ।
अगर कपुर चुआ त्याहा धरीइ देह दइहइन एणी परि करी ॥५२॥(५४)
मेघकुमार सुर आव्यो हवइ करी छटानिं चहइ ओहोलवइ ।
डाढां उपंली जिननी जेह सुधर्म ईश्यांणेद्र लइ तेह ॥५३॥(५५)
डाढ हेठली लइ चमरेद्र डाभी डाढा लीइ बलेद्र ।
पूजी पखालीं डाबडइ धरइं कामभोग तीहा नवि करइ ॥५४॥(५६)
डाढा नीर छाटइ लवलेस रोग शोग दूख दुरि कलेस ।
बीजा सुर हंरी सुखनिं कामि हाड दंत लीइ तेणइ ठामि ॥५५॥(५७)
श्रावक अग्यनीनिं पूजेह केता नर रिक्षानिं लेह ।
केता भसम लगावइ अंगि जिननुं नाम जपइ मनरंगि ॥५६॥(५८)
सुरवर थुभरत्न नमइ करइ नंदीस्वर द्वीपिं संचरइ ।
जिन पूजी निं टालइं शोष गया देव करी पूण्यपोष ॥५७॥(५९)
मलीनाथ जे मुगतिं गया एकसो वरस घरिं जिनवर रह्या ।
चोपन सहिस नवसहिंज वरीस संयम पालइ जिन यगदीस ॥५८॥(६०)
चोपन हजार नवसहि व्रर्ष जोय एक दीन उंणो भाखुं सोय ।
एटलुं जिन केवलपरयाय सहइस पंचावन वरसनुं आय ॥५९॥(६१)
लही केवल मुगतिं संचरइ **रीषभ कवी** गुणमाला करइ ।
करम खपइ पूण्य होइ घणुं समकीत नीरमल ते आपणुं ॥६०॥(६२)
एक गुण राजादीकना गाय ते नर सुखीआ आहाकणि थाय ।
प्राहिं पामइ परभवि हाणिं लोभिं अधम कर्‌यो गुणखाणि ॥६१॥(६३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक वखाणइ नारि सरूप आहा सुख नही परभवि दुखकुप ।
रगत मंश हाडना खंड सोय वखाणी अमृतकंड ॥६२॥(६४)
एक तो वेसर जोडइ आहिं अही कणि दुखीओ होइ प्रांहिं ।
परभवि दुख पामि नीरधार सार पूरष निं करइ असार ॥६३॥(६५)
एक मुरिख जोडइ गुण भाड आभवि परभवि तस मुखि खाड ।
ढाक्या बोल परगट उंचरइ थाइ भाड चोगतिम्हां फरइ ॥६४॥(६६)
कुगुरु कुदेव तणा गुण गाय अर्थ सीध कसी नवि थाय ।
सुगुरु सुदेवनी नंद्या करइ धरम उंथापी चोगति फरइ ॥६५॥(६७)
अशा ककव्य हुआ जगि बहुं कवतां पार न पाम्या कहुं ।
सुगुरु सुदेव तणा गुण गाय आ भवि परभवि सुखीओ थाय ॥६६॥(६८)
स्तुति करतां लहइ लागी जोय इंद्र तणी पदवी तो होय ।
वाधी लहइ तो गणधर थाय तीवर रागि हुओ जिनराय ॥६७॥(६९)
लहि लागानुं थानक एह जिनवरना गुण स्तविइ जेह ।
रावण परि तीर्थंकर थाय करम खपी निं मुगतिं जाय ॥६८॥(७०)
एहेवा जिन स्तुतिना गुण लही मल्लीनाथ मिं स्तवीं सही ।
पूरव पात्तिक चाल्यां वही सकल सीध नीज मंदिर थई ॥६९॥(७१)
पूरविं तु न दीठो क्याहि तो जीउं फरतो चोगतिमाहि ।
कहीइं न वंद्या ताहारा पाय तो सीधगति मुझ क्याहाथी थाय ॥७०॥(७२)
ताहरा गुण नवि बोल्यो कदा तो क्यम जाइ भवआपदा ।
कहीइं न कीधो ताहारो धर्म तो क्यम त्रुटइ आठइ करम ॥७१॥(७३)
स्युपनिं तुं दीठो जो हंत तो मुझ भवनो आवत अंत ।
ताहारो धरम अनमोध्यो हंत तो मुझ सुखीओ थाअत जंत ॥७२॥(७४)
अनंतकाल मुझ पुरविं गयो ताहारा नाम विनां अही रह्यो ।
हवइ मुझ सीधां सघलां काम पाम्यो मल्ली जिनेस्वर नाम ॥७३॥(७५)
स्तवतां सुखशाता मुझ अंगि जईन धर्म साधु मनरंगि ।
जस कीरति जगम्हा बोलाय मलीनाथ त्हारो महीमाय ॥७४॥(७६)
तु ठाकुर हुं ताहारो दास मिं कीधो तुझ गुणनो रास ।
गुणि भण[इ] सुणइ साभलइ तेनिं बारि स्युभ-सुरतरू फलइ ॥७५॥(७७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फलों मनोरथ सघलों आज श्रीगुरुं नामिं सीधा काज ।
विजयानंदसुरिस्वर नाम जेहना जग बोलइ गुणग्राम ॥७६॥(७८)
तेह तणइ चरणे अनुंसरि मलीनाथ गुण वेली करी ।
सकल कवीनिं नामी सीस मिं गायो जिनवर ज्यगदीस ॥७७॥(७९)
ज्ञाताधर्मकथांग सुसार छठइ अंगिं एह वीचार ।
समध सोय त्याहाथी मइं ग्रही रास रच्यो हईअडइ गहइगही ॥७८॥(८०)
त्राबावतीम्हा गायो रास ज्याहा छइ अढार वरणनो वास ।
ज्ञाति चोरासी वाणिग वसइ दान पूण्य करता ओहोलसइ ॥७९॥(८१)
पारिख वजीओ नि राजीओ जस महीमा जगम्हा गाजीओ ।
अऊठलाख रूपक पूण्य ठामि अमारि पलावी गामोगामि ॥८०॥(८२)
ओसवंसि सोनी तेजपाल शेत्रुज गीर ऊधार वीसाल ।
त्याहारी दोय लाख खरचेह **त्राबावतीनो** वासी तेह ॥८१॥(८३)
सोमकरण संघवी ऊदइकरण अध लख्य रूपक ते पुण्यकरण ।
उसवंसि राजा श्रीमल अधलख्य रूपकि खरचइ भल ॥८२॥(८४)
ठकर जइराज अनिं **जसवीर** अधलख्य रूपक खरचइ धीर ।
ठकर कीका वाधा जेह अधलख्य रूपक खरचइ तेह ॥८३॥(८५)
अस्युं नगर **त्रंबावती** सार रत्नहेम रूपक दातार ।
भोगी पूरषनिं कृरणावंत वाणिग छोडइ बाध्यां जंत ॥८४॥(८६)
पसु पूरषनी पंडा हरइ मादा नरनिं साजा करइ ।
अजा महीषनी करइ संभाल श्रावक जीवदया प्रतिपाल ॥८५॥(८७)
पंचासी जिनना प्रासाद धज तोरण तीहा घंटानाद ।
बिहइतालीस याहा पोषधशाल करइ वखाण मूनी वाचाल ॥८६॥(८८)
पोषध पडीकमणु पुजा य पूण्य करंतां दाढा जाय ।
प्रभावना वाख्यानि ज्याहि शामीवाछिल होइ प्राहि ॥८७॥(८९)
ऊपाशरो देहेरुं नि हाट अत्यंत दूरि नही ते वाट ।
ठंडिल गोचरि सोहोली आहि मुनि रहिवा हीडइ अही प्राहि ॥८८॥(९०)
अस्युं नगर **त्रंबावती** खास मिं जोड्यो मलिनाथनो रास ।
कोण संवछर मास दीन वार गुढपणइं कीजइं वीस्तार ॥८९॥(९१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत बोण[५] सीधी[८] षट[६] चंद[१] पोस मासि हुओ आनंद ।
ऊजल परवी तेरसि रविवार रास तणो कीधो वीस्तार ॥९०॥(९२)
प्रागवंसि वीसो वीख्यात **मिहइराज संघवी** मुख्य कइहइ वात ।
संघवी सागण सुत तस होय द्वादश वरतनो धोरी सोय ॥९१॥(९३)
तास पूत्र पूरइ मन आस कवीता **श्रावक रीषभदास** ।
गायो मलिनाथनो रास सकल संघनी पोहोती आस ॥९२॥(९४)

॥ ढाल ॥
दीठो रे वामा को नंदन दीठो । राग - धन्यासी ॥

आसो रे मूझ आज फलि मन आसो
भ्रह्मसुता चरणे नमि कीधो, मह्लीनाथनो रासो रे ।
मूझ पोहोती मननी आसो ॥ आचली ॥ २९३ ॥ (२९५)
मेर मही सायर ससी ज्यांहि जब लग सूर प्रकासो ।
जव लग सीधशला सुरनां घर तव लग रिहइज्यो रासो रे ॥मूझ०॥९४॥(९६)
सूणी साभली जि नर चेत्या छुटी भवनो पासो ।
रीषभ कहइ ए रास सूणंता अनंत सुखम्हा वासो रे ॥९५॥(९७)
मुझ पोहोती मननी आसो ॥

इती श्री मह्लीनाथ रास संपूर्ण ॥
शुभ भवतू ॥
कल्याणमस्तुं । छः ॥

गाथा - २९५॥(२९७)॥

कठिन शब्दार्थ

कडी क्र.	शब्द	अर्थ
४	माहावदेमांहि	महाविदेह (क्षेत्र)मां
४	वीजइ	विजय (क्षेत्र विशेष)
६	वसन	व्यसन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६	अकर	कर-रहित
६	अन्या	अन्याय
७	वीनोधी	विनोदी
८	मंत्र	मंत्री/मित्र
१०	च्यंत	चिन्ता-विचार
११	ख्यत्री ग्नाति	क्षत्रिय ज्ञाति
१३	मंत्री	मैत्री
१४	धर्ण	धरण
१९	ऊपरयो	ऊपार्ज्यो
२१	थानक	जैन धर्म-प्रसिद्ध २० स्थानक
२१	नीकाचइ	सुदृढ करे
२४	जइअंत	जयंत (विशेष नाम)
२४	सागर	सागरोपम (काल-माप)
२४	नीध्यान	निदान
२८	यत्रस्युत्रु	जैत्रशत्रु
३१	सही	सिंह
३२	रेढ	ढगलो
३४	चक्र	चक्री
३७	लखी साटि	६० लाख
३७	सनाथ	स्नात्र-स्नान
४०	सेय	स्वेद (?)
५८	काउछर्ग	कायोत्सर्ग
६०	विरि	? वैरी?
६२	दूखर	दुष्कर
७६	धव्य	धाव (?)
७९	जख्य	यक्ष
८०	संडासो	अंगुठो
८३	लया	लज्जा
८८	अस्युच	अशुचि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कडी क्र.	शब्द	अर्थ
८९	सरया	सरज्यां
९६	अंतेवर	अन्तःपुर
९८	नालीद्वीप	नालिकेरद्वीप
१०२	दरि	गुफा
१०८	रेवणी	रेवडी
१०९	कटीक	कटक-सैन्य
११५	विरीं	वैरी
१२६	ओहोलसो	उल्लासो
१२६	ऊत्म	उत्तम
१२७	शक्र	शुक्र-वीर्य
१३१	ठंडील ठार	स्थंडिल (शुद्ध भूमि) रूप स्थान
१३३	वाटली	वर्तुलाकार-गोळ (?)
१३४	भीति	भींत
१३५	शल	शल्य (सल्लं कामा, विसं कामा नो सन्दर्भ)
१४०	सप्तलवी	'लवसत्तम' नामनो देव-प्रकार
१४२	ग्रीवेय्य	ग्रैवेयक नामे देवलोक-प्रकार
१४२	लेशा	लेश्या
१४६	चर्ब	चरबी
१५१	अहीआपोह	ऊहापोह
१५२	उशभ	अशुभ
१५३	वोशरे	विसर्जित थाव
१५६	मोहोत	महत्त्व
१५९	लोकांतिक	९ लोकान्तिक, देवजाति
१६०	व्यना नव्य लेह	विना नहि ले
१६५	क्यरपीआं	कृपण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कडी क्र.	शब्द	अर्थ
१६६	बापईडो	बपैयो-चातक
१६९	जाचीक	याचक
१७५	षासर	खासडां-जूतां
१७८	शलां	सडेलां
१८०	यारइ	ज्यारे
१८२	गाद्रप	गांधर्व
१८२	खुप	
१८२	शबकां	शिबिका
१८३	सूति	स्तुति (?)
१८५	डंडारस	दांडियारास
१८५	सिहिश्रावन	सहस्राम्रवन
१८६	अशेख विरख	अशोकवृक्ष
१८७	पचकता	पच्चक्खाण लेता
१८७	वइ	वये-उंमरे
१८८	दीव	दिव्य
१९३	पध्यमनी	पद्मिनी
१९९	व्यवरी	विवरी-विवरण सहित
२०१	भ्रह्म वरत	ब्रह्मचर्य-व्रत
२०२	नरच्यार	निरतिचार-दोषमुक्त
२०३	मुड	मुण्ड-माथुं
२०८	उंखाल पुखाल	?
२१०	मींहीं	?
२१२	सधइणा	?
२१८	शघ	संघ
२२०	वईकरी	वैक्रिय
२२०	नीध्यान	निधान
२२२	रजुप्रज्ञा	ऋजु-प्राज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कडी क्र.	शब्द	अर्थ
२२६	जीनकलपी	जिनकल्प-एक साधना विशेष, ते करनार साधु
२२७	थीवरकलप	स्थविरकल्प-साधुओनी आचरणा
२२७	अजीआ	आर्या-साध्वी
२२७	व्याव्हार	विहार
२२८	देवदुक्ष	देवदूष्य वस्त्र
२३४	ईत	ईति-उपद्रवो
२३५	दुरभख्य	दुर्भिक्ष-दुकाळ
२३५	भि	भय
२३८	कंटीक	कंटक
२३८	वीरख	वृक्ष
२४०	असुल	शूळ विनानां
२४१	रति	ऋतु
२४७	नरखइ	निरखे
२५६	रिक्षा	रक्षा-भस्म
२६१	आहाकणि	अहीं कने
२६१	प्राहिं	प्रायः
२६२	आहा	अहीं
२६४	भाड	भांड
२६६	ककव्य	कुकवि
२७८	समध	संबंध
२८५	पंडा	पीडा
२८७	दाढा	दहाडा-दिवसो
२८८	वाठ	वाट

C/o. देवीकमल जैन स्वाध्याय मन्दिर
ओपेरा, पालडी, नवा विकासगृह रोड, अमदावाद-७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुश्री कौमुदी बलदोटा – लिखित

" 'नारद' के व्यक्तित्व के बारे में जैन ग्रन्थों में प्रदर्शित संभ्रमावस्था" *

– इस शोधपत्र के बारे में कुछ विचार –

मुनि कल्याणकीर्तिविजय

इस लेख में नारद सम्बन्धी जो कुछ लिखा गया है उस पर कुछ समीक्षा करनी आवश्यक है, ऐसा लगने से यहां पर कुछ विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।

पहली बात तो यह है कि, पूरे लेख का विहङ्गावलोकन करने से लगा कि लेखिका को जहां पर भी नारद शब्द पढने-सुनने मिला वहां से उसे उठाकर उन्होंने उसका समन्वय करने का प्रयत्न किया है । उनका प्रयत्न यद्यपि सराहनीय है तथापि इससे यह भी प्रतीत होता है कि उन्हें परम्परा की अभिज्ञता एवं ग्रन्थसन्दर्भों का उचित उपयोगविषयक बोध बढाना जरूरी है ।

'इसिभासियाइं' में जो नारदऋषि (अर्हत् नारद)का अधिकार है वे तो प्रत्येकबुद्ध मुनि हैं । उनका प्रचलित नारद के साथ कोई वास्ता ही नहीं है । फलतः इसके आधार पर यह कहना कि "श्रोतव्य-श्रवणीय का सम्बन्ध प्रमुखता से नामसंकीर्तन तथा गायन से है" इत्यादि, यह उचित नहीं है ।

साथ ही, ऋग्वेद के नारद, रामायण के नारद या भक्तिसूत्र के रचयिता नारद से भी इसिभासिआइं के नारद का कोई सम्बन्ध अभी तक प्रस्थापित नहीं हुआ है । वास्तव में तो उन तीनों का परस्पर कोई सम्बन्ध ही नहीं है । केवल नामसाम्य से सब को परस्पर जुडे हुए मानना यह समन्वय की इच्छा का अतिरेक लगता है ।

तथा, "अनेक परस्परविरोधी मतों का तथा विशेषणों का मिलान

* अनुसन्धान-४९ में प्रकाशित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए उन्हें (जैन ग्रन्थकारों को) जो कठिनाई महसूस हुई, इसी के कारण जैन आचार्यों की संभ्रमावस्था दिखाई देती है ।" - ऐसा लिखना कुछ जल्दबाजी लगती है । क्योंकि जैन परम्परा में त्रेसठ शलाका पुरुष के अन्तर्गत नौ वासुदेव - बलदेव व प्रतिवासुदेव के समकालीन नौ नारद का भी अस्तित्व स्वीकृत है । और ये नौ नारद, **इसिभासिआइं** के प्रत्येकबुद्ध नारद व **स्थानाङ्ग-समवायाङ्ग-भगवतीसूत्र-तत्त्वार्थसूत्रादि** में निर्दिष्ट नारदों से तथा **ऋग्वेद-पुराणादि** में निर्दिष्ट नारदों से भिन्न ही है । फिर जब इनका परस्पर मिलान ही अप्रस्तुत है तब उसे करने में जैन आचार्यों में संभ्रमावस्था दिखाई देती है - ऐसा कहना कैसे उचित होगा ?

वास्तव में निरे शाब्दिक अध्ययन से व साम्यवैषम्य से कोई विधान किया नहीं जा सकता । ऐसा करने से कभी पूर्वसूरिओं का अविनय होता है और अपने अज्ञान का प्रकाशन भी, जो हमें अनधिकारी बना सकता है।

स्थानाङ्गसूत्र में व **तत्त्वार्थसूत्र** में जिस नारद का उल्लेख है वह व्यन्तरनिकाय की गन्धर्व जाति का देव है । उसका निकायगत स्वभाव ही गान-संगीत का है । (ऋषिभाषित में जो देवनारद ऐसा उल्लेख किया गया है वह प्रत्येकबुद्ध नारद ऋषि की पूज्यता का द्योतन करता है, किन्तु उसका स्थानाङ्गसूत्र के व्यन्तरनिकायगत देव नारद-गन्धर्व के साथ कोई अनुबन्ध नहीं है ।)

तथापि "नारद का त्रैलोक्यसंचारित्व ध्यान में रखकर उन्हें व्यन्तरदेव कहा है, और, गायनप्रवीणतानुसार उन्हें व्यन्तरदेवों के चौथे 'गान्धर्व' उपविभाग में स्थान दिया है" - ऐसे लेखिका के कथन से यह मालूम पडता है कि लेखिका के दिमाग में एक बात बैठा दी गई है कि - 'जो नारद होता है (चाहे कोई भी हो, पर नाम से वह नारद होना चाहिए), उसे त्रैलोक्यसंचारी ही होना चाहिए और उसे गायनकुशल भी होना चाहिए । ऐसा होने के कारण वह हर जगह इसी बात का समन्वय येन केन प्रकारेण कर रही है ।

साथ ही, ऋषिभाषित के 'श्रोतव्य' का अन्वयार्थ सुनने योग्य - श्रुतज्ञान से है, नहि कि 'श्रवणीय गायन' से । अतः ऐसे अर्थ निकालना वाजिब नहीं लगता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवायाङ्गसूत्र में, होनेवाले इक्कीसवें तीर्थंकर के रूप में जिनका उल्लेख किया गया है वे नारद श्रीमुनिसुव्रतस्वामी के तीर्थ में हुए हैं । जब कि कृष्ण वासुदेव श्रीनेमिनाथ प्रभु के तीर्थ में हुए हैं । अब यहां "नारद इक्कीसवें तीर्थंकर होनेवाले हैं इसका कारण यह हो सकता है कि वासुदेव कृष्ण भावी तीर्थंकर होनेवाले हैं ।" - ऐसा विधान करना कहां तक संगत है यह सोचना चाहिए ।

और "वासुदेव कृष्ण का प्रथमतः नरकगामी होना और नारद का न होना एक अजीब सी बात है ।"

- यह खुद एक अजीब सा विधान है । क्योंकि, प्रथम तो जैन शास्त्रों के अनुसार, वासुदेव का जीव 'निदान' कर के वासुदेव बनता है, फलतः उसकी अधोगति निश्चित ही है । दूसरा, वासुदेव अपने भव में भी इतने युद्ध व आरम्भ-समारम्भादि करते हैं कि उनकी नरकगति निश्चित ही है । पर इससे यह कैसे निश्चित हो सकता है कि (वासुदेव के सम्पर्क में आने से) नारद भी नरकगामी हो ! क्योंकि नारद कोई 'निदान' करके तो हुए नहि, ना ही वे कुछ आरम्भ-समारम्भादि बडे पाप भी करते हैं कि जिससे वे नरकगामी बनें !

ऐसी विसंगतियां इस शोधपत्र में और भी हैं, किन्तु सब को बताने का कोई अवसर नहीं है । सार इतना ही है कि ऐसे शोधपत्र लिखने के लिए कुछ अधिक सज्जता हो यह आवश्यक प्रतीत होता है । बिना सज्जता से लिख देने में संशोधकीय विश्वसनीयता को ठेस लग सकती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थपरिचय :

'तर्करहस्यदीपिका' नो अनुवाद :

भारतीय तत्त्वज्ञानना विद्यार्थीओ माटे अेक उपहार

'तर्करहस्यदीपिका' : श्री हरिभद्रसूरिकृत 'षड्दर्शन समुच्चय'नी टीका. टीकाकार श्री गुणरत्नसूरि. गुजराती अनुवाद : डो. नगीनभाई जी. शाह, प्रका. : श्री १०८ जैनतीर्थदर्शन भवन ट्रस्ट, पालीताणा-अमदावाद-मुंबई. ई.स. २००९, पृ. ७२४+७८. मूल्य : ५८०/-.

श्री हरिभद्रसूरि कृत 'षड्दर्शन समुच्चय' ग्रन्थ भारतीय दर्शनोनो सारसंक्षेप रजू करती अेक प्रशिष्ट कृति तरीके विख्यात छे. समदर्शी श्री हरिभद्रसूरिअे आमां दर्शनोनुं संक्षिप्त दर्शन कराववानो अभिगम राख्यो छे. आ लघुकृति पर श्री गुणरत्नसूरिअे 'तर्करहस्यदीपिका' नामे विस्तृत टीका रची छे. मूळ ग्रन्थमां सूचिरूपे संगृहीत दार्शनिक बिन्दुओने टीकाकारे तार्किक चर्चा रूपे अेटली विशदताथी अने अधिकृतताथी चर्च्या छे के आ टीका महाभाष्यनी कक्षाअे पहोंची गई छे. प्रत्येक दर्शनोना सिद्धान्तो चोकसाईपूर्वक उपस्थित करी ते ते दर्शन द्वारा तेना समर्थन माटे प्रयोजायेल तर्को टीकाकार विस्तारथी समजावे छे. जैनमतना निरूपणमां अन्य मतोनो प्रतिवाद करवामां आव्यो छे, किंतु आ चर्चा धीर-गम्भीर भावे थई छे, क्यांय कटुता, कटाक्ष के कर्कशता डोकाती नथी. टीकानो वाक्यविन्यास सुग्रथित, स्पष्ट अने अर्थगरिष्ठ होवा छतां दूरान्वयी के क्लिष्ट नथी, बल्के प्रसादमधुर संस्कृतगिरानो रसास्वाद करावनारो छे.

आ प्रौढ कृतिनो गुजराती अनुवाद आ ग्रन्थमां आपवामां आव्यो छे. अनुवादक छे भारतीय तत्त्वज्ञानना लब्धप्रतिष्ठ विद्वान डो. नगीनभाई जी. शाह. आ प्रशिष्ट ग्रन्थनो अनुवाद दर्शनशास्त्रोना प्रखर अभ्यासी विद्वानना हस्ते थाय अे अेक सुभग संयोग गणाय. अेक अधिकारी विद्वानना हाथे थयेलो आ अनुवाद, मात्र अनुवाद न रहेतां विशद विवरणनी कक्षाअे पहोंच्यो छे. संस्कृतनो पर्याप्त अभ्यास न होय तेवा विद्यार्थीओ पण आ अनुवादना आधारे आ प्रशिष्ट ग्रन्थमां ठसोठस भरेली तर्कसमृद्धि सुधी पहोंची शके अेवो आ अनुवाद छे. शब्दशः भाषान्तरने बदले अर्थवाही गुजराती रूपान्तर छे तेथी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगम अने सुपाठ्य छे.

डो. नगीनभाईअे लखेली प्रस्तावना भारतीय तत्त्वज्ञानना अभ्यासीओ माटे अेक उपहार समान छे. मूळ ग्रन्थ, ग्रन्थकार तथा टीकाकार विशे तो तेमणे अेमां विगते विचारणा करी ज छे, उपरांत आ ग्रन्थमां चर्चित दर्शनोनी रूपरेखा आपी छे अने आ ग्रन्थमां नथी समावायां अेवां उत्तरकालीन भारतीय दर्शनोनो परिचय पण आप्यो छे. आ व्यापक-विश्लेषक प्रस्तावना थकी आ ग्रन्थने नवुं परिमाण सांपडे छे. ग्रन्थ, टीका तथा अनुवाद त्रणेय अधिकारी जनना हाथे मावजत पाम्या छे - अे आ प्रकाशननी विशेषता छे.

आ अनुवाद द्वारा गूर्जरगिराना ग्रन्थभण्डारमां अेक रत्ननो उमेरो थयो छे अने भारतीय दर्शनशास्त्रोना अभ्यासी वर्ग माटे अेक अपरिहार्य छतां उपकारी बने अेवुं साधन उपलब्ध थयुं छे. पुस्तक मुद्रणदोषथी मुक्त अने परिशिष्टोथी सज्ज छे. मुद्रण-बांधणी-कागळ उत्तम प्रकारना छे.

- उपा. भुवनचन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माहिती :

नवां प्रकाशनो

१. जैन आगमोमां आवतां प्राकृत विशेषनामोनो परिचयात्मक कोश : १, २ प्रका. : श्री १०८ जैन तीर्थदर्शन भवन ट्रस्ट, पालीताणा, ई. २००८

"Prakrit Proper Names - Vol. 1-2" नामे, डॉ. मोहनलाल मेहता अने डॉ. के. आर.चन्द्र द्वारा सम्पादित-संकलित, ला.द. विद्यामन्दिरनी ग्रन्थश्रेणिमां प्रकाशित सन्दर्भ-ग्रन्थनो डॉ. नगीन जे. शाह द्वारा थयेल गुर्जर अनुवाद. एक अत्यन्त उपयुक्त अने मूल्यवान सन्दर्भग्रन्थ गुजरातीमां उपलब्ध करावत्वा बदल अनुवादक अने प्रकाशक अभिनन्दनने पात्र ठरे छे. आगमविषयक केटलुंक साहित्य, आ (अंग्रेजी) ग्रन्थना प्रकाशन पछीय, प्रकाशमां आव्युं ज होय. तेनो पण आवो (पूरक) कोश बने ते जरूरी छे. उपरांत, आगमेतर साहित्य पण विपुल मात्रामां उपलब्ध छे. तेमां आवतां नामोनो पण आवो कोश कोई करे तो इच्छवाजोग छे. अलबत्त, आ काम समूह-कार्य (Team-work) नी रीते ज थई शके.

२. श्रीजिनरङ्गसूरि-ग्रन्थावली, सं. महोपाध्याय विनयसागर, प्रका. : एम.एस.पी.एस.जी. चैरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर, ई. २००९

खरतरगच्छना आ. श्रीजिनरङ्गसूरिनो सत्ताकाल सत्तरमो शतक हतो. तेमणे रचेली भाषाबद्ध विविध लघु पद्यात्मक रचनाओनो संग्रह.

३. पुण्यचरितमहाकाव्यम्, कर्ता : पं. नित्यानन्द शास्त्री, सं. आ. विजय सोमचन्द्रसूरि, म. विनयसागर, प्रका. एम.एस.पी.एस.जी चैरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर, ई. २००८

२०मी शताब्दीमां विद्यमान खरतरगच्छीय साध्वीश्रीपुण्यश्रीनुं जीवन वर्णवतुं आ काव्य छे, जे वि.सं. १९६७ मां रचायुं होवानो प्रस्तावनामां उल्लेख छे. १८ सर्गमां पथरायेलुं आ काव्य छे. विविध परिशिष्टोथी आ काव्यग्रन्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभूषित छे.

४. प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतककाव्यम् - कल्पलतिकाटीकासहित, रचयिता : श्रीजिनवल्लभसूरिजी (विक्रमनो १२मो सैको), टीकाकार : महोपाध्याय श्रीपुण्यसागरजी, सम्पादक : आ. श्रीविजयसोमचन्द्रसूरिजी म.-विनयसागरजी, प्रकाशक : रान्देर रोड जैन संघ - सुरत, एम.एस.पी.एस.जी. चेरीटेबल ट्रस्ट, जयपुर, ई.स. २००८

आ ग्रन्थ प्रश्नोत्तरात्मक १६१ प्रहेलिकाओ धरावे छे. अनेक चित्रालङ्कारो आ प्रहेलिकाओमां प्रयोजाया छे. ग्रन्थमां मूकवामां आवेली टीका (रचना वि.सं. १६८०) आ प्रहेलिकाओना उकेलमां घणी सहायता पूरी पाडे छे. सम्पादन अने मुद्रण उत्तम रीते थयुं छे. विपुल ऐतिहासिक सामग्री पूरी पाडती प्रस्तावना अने ग्रन्थनी उपयोगितामां वधारो करनारां परिशिष्टोथी आ ग्रन्थ अलङ्कृत बन्यो छे.

५. १. **आगमपद्यानाम् अकारादिक्रमेण अनुक्रमणिका-१**
२. **प्राकृतपद्यानाम् अकारादिक्रमेण अनुक्रमणिका-२**
३. **संस्कृतपद्यानाम् अकारादिक्रमेण अनुक्रमणिका-३**
४. **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रश्लोकानाम् अकारादिक्रमेण अनुक्रमणिका-४**

- सं. मुनि श्रीविनयरक्षितविजयजी, प्र. शास्त्रसन्देश, सुरत, वि. २०६५ शास्त्रसन्देशमाला-ग्रन्थाङ्क २५, २६, २७, २८

सन्दर्भग्रन्थो ए संशोधननी अनिवार्य मांग रही छे. जैन परम्परानो इतिहास जेवा इतिहासविषयक ग्रन्थो के जैन गूर्जर कविओ जेवा सूचिग्रन्थो वगर मातबर संशोधननी कल्पना पण न करी शकाय. अने वधु साचुं कहीए तो सन्दर्भग्रन्थोनी सहायताथी ज संशोधन वधारे प्रमाणित तेमज परिपूर्ण बने छे. वळी सन्दर्भग्रन्थोनी उपयोगिता मात्र संशोधन पूरती ज सीमित नथी; पण अभ्यास, व्याख्यान, रचना व. ज्ञानने लगती बधीज प्रवृत्तिओमां सन्दर्भग्रन्थो प्राय: अनिवार्य बनी रहे छे.

सन्दर्भग्रन्थोनी आटआटली जरूरियात होवा छतां पण आवा ग्रन्थोनुं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्जन जवल्लेज थाय छे, तेमां मुख्य कारण ए छे के आवां सर्जनो भरपूर निष्ठा, मेधावी प्रतिभा अने पुष्कळ शारीरिक श्रम मांगे छे. समय-संयोग-साधननी अनुकूलता पण जरूरी बने छे. बधो वखत कंइ आ बधुं उपलब्ध नथी थतुं, पण थाय छे त्यारे अनूठुं सर्जन नीपजे छे.

आवुं ज एक महामूलुं सर्जन एटले उपरना ४ दळदार सूचिग्रन्थो. मुनि श्रीविनयरक्षितविजयजीए ८ वर्षना परिश्रमथी आ अनुक्रमणिकाओ तैयार करी छे. चार ग्रन्थोमां कुल मळीने ६२६ ग्रन्थोना १,७७,००० श्लोको अकारादिक्रमे गोठवाया छे. ग्रन्थमां दरेक श्लोकनुं प्रथम चरण अने ते श्लोक जे ग्रन्थमां होय ते ग्रन्थनाम-श्लोकक्रमाङ्क नोंधवामां आव्या छे.

आ ४ सूचिओनो क्रमशः परिचय -

१. आमां ४४ आगम-भाष्यादि गाथाओनी अनुक्रमणिका छे. पाछळ 'संवेगरंगशाला' ग्रन्थना श्लोकोनी स्वतन्त्र अनुक्रमणिका छे.

२. ३७३ प्राकृतग्रन्थोनी गाथाओनी अनुक्रमणिका.

३. २०५ संस्कृतग्रन्थोना श्लोकोनी अनुक्रमणिका + 'लोकप्रकाश' ग्रन्थनी स्वतन्त्र अनुक्रमणिका.

४. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रना तमाम श्लोकोनी अनुक्रमणिका + उपा. श्रीयशोविजयजी रचित 'वैराग्यकल्पलता-वैराग्यरति' आ बे ग्रन्थोना श्लोकोनी भेगी अनुक्रमणिका.

आ चारे भागमां नीचे मुजबना छ परिशिष्टो छापवामां आव्या छे :

१. ३७३ प्राकृतग्रन्थोनी अकारादिक्रमे कर्ता अने श्लोकसंख्या साथेनी अनुक्रमणिका.

२. २०५ संस्कृतग्रन्थोनी उपर मुजबनी अनुक्रमणिका.

३. उपरना ३७३+२०५ = ५७८ ग्रन्थोनुं विषयवार विभाजन

४. उपरना ज ५७८ ग्रन्थोनुं कर्तावार विभाजन

५. अष्टक, विंशिका वगेरे संख्यावाचक-शब्दोवाळुं नाम धरावता ग्रन्थोनी सूचि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. एकसरखा नामवाळा ग्रन्थोनी यादी

जो के आ परिशिष्टोथी ग्रन्थ वधु उपयोगी बन्यो छे, छतां आगमगाथासूची के त्रिषष्टिश्लोकसूची साथे आ परिशिष्टोनो बिल्कुल सम्बन्ध न होवाथी त्यां छापवा अनावश्यक लागे छे.

अभ्यासीओनी सुविधा माटे, आ अनुक्रमणिकामां लेवामां आवेला बधा ग्रन्थो एक ज स्थले उपलब्ध थाय ते हेतुथी, कुल ५४३ ग्रन्थोनी संशोधित वाचना शास्त्रसन्देशमाला-ग्रन्थाङ्क १ थी २४ मां प्रसिद्ध करवामां आवी छे, ते पण अनुमोदनीय छे.

एक वात अत्रे समजवा योग्य छे के नजरे चडता तमाम साक्षीपाठोनां स्थान आमांथी नहि मळे. तेवी अपेक्षा पण न राखी शकाय, कारण के साक्षीपाठोमां जैनदर्शन सिवायना पण घणा विषयोने लगता श्लोको होय छे, ज्यारे आमां जैनदर्शनने लगता ग्रन्थो ज ग्रहण कराया छे. ते पण ६२६ ज. तेमज आ ६२६ ग्रन्थोमां ज जे श्लोको साक्षीपाठ तरीके उद्धृत होय ते अहीं नथी समावाया. गद्य साक्षीपाठोनां स्थान पण आमां न सांपडे ते स्वाभाविक छे. आथी 'एको भावः सर्वथा येन दृष्टः' जेवा अज्ञातमूल श्लोकोनो आमां समावेश न थाय ते मर्यादा बनी जाय छे. आ बधुं कहेवा पाछळनो आशय ए जणाववानो छे के आ कार्य कंइ आ दिशाना परिश्रमनी पूर्णाहूति नहीं, पण शरूआत छे. अनेक रीते आवी घणीघणी अनुक्रमणिकाओ बनाववानी जरूर छे.

अन्ते, आ ग्रन्थो द्वारा मुनिश्रीए जैनशासननी अनुपम सेवा करी छे, संशोधकोनी अनिवार्य जरूरियात पूरी पाडी छे अने ग्रन्थसर्जननी एक नवी दिशा चींधी छे ते निःशङ्क छे. ते बदल आ मुनिवर्यने हार्दिक धन्यवाद.

५. **जंबुचरियम्** कर्ता : मुनि गुणपाल, सं. मुनि जिनविजयजी; पुनः सं. साध्वी चन्दनबालाश्रीः; पुनः प्रकाशक : भद्रङ्कर प्रकाशन, अमदावाद; सं. २०६५, ई. २००९

सिंघी ग्रन्थमालामां ई. १९५९मां सम्पादित-प्रकाशित आ ग्रन्थ पुनः प्रकाशित थयेल छे. आमां मूल प्रकाशनगत शुद्धिपत्र प्रमाणे भूलो सुधारी लेवामां आवी छे. तथा सातेक उपयोगी परिशिष्टो तैयार करी मकवामां आव्यां छे. सिंघी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरीजना विविध ग्रन्थो जुदा जुदा मुनिवरो द्वारा प्रगट थया छे, थतां रहे छे. तेमां महदंशे मूळ सम्पादक-प्रकाशकादि गौण बने ते रीते प्रेरक साधुओ तथा दाता संस्थाओ वगेरेनां नामो, फोटा वगेरे भरवामां आवे छे, जे विवेक अने औचित्य विहोणुं ज लागे छे. प्रस्तुत प्रकाशन एवा अविवेकथी मुक्त छे ते नोंधपात्र बाबत गणाय. सुघड अने सुवाच्य मुद्रण.

६. नयविंशिका : कर्ता तथा टीकाकार तेमज अनुवादक : आ. अभयशेखरसूरि, प्रका. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, धोळका, सं. २०६५

श्रीहरिभद्राचार्यनी विंशति विंशिकाओ ए जैनोनो प्रसिद्ध शास्त्रग्रन्थ छे. ए ग्रन्थनुं नाम 'विंशिका' उपाडीने रचाती आ निबन्धात्मक रचना छे. कर्ताए पूर्वे निक्षेपविंशिका तथा सप्तभङ्गी विंशिका पण रचेल छे. पोताना दीर्घ शास्त्रावगाहनना परिपाकरूपे पोते जे अनुप्रेक्षा करी, तेमां पोताने जे तर्कसङ्गत जणाती स्फुरणाओ थई, तेने कर्ताए आ विंशिकाओरूपे रजू करेल छे. आ रचनाओ विद्वत्तापूर्ण निबन्धात्मक जरूर गणाशे. पण तेने 'शास्त्र'नो दरज्जो आपवो ते उतावळ गणाशे. पोतानी स्फुरणाओने विशद बनाववा माटे कर्ताए टीका उपरांत अनुवाद पण पोते ज रचेल छे, जे तेमनी चिन्तनधाराने समजवा माटे सहायक नीवडी शके छे. 'नय'ना अभ्यासीओने विचारोत्तेजक पुस्तक.

७. भारतीय तत्त्वज्ञान : (श्रीहरिभद्रसूरिकृत षड्दर्शनसमुच्चय परनी श्रीगुणरत्नसूरिकृत टीका 'तर्करहस्यदीपिका'नो गुर्जर अनुवाद). ले. डॉ. नगीनदास जे. शाह. प्रका. १०८ जैन तीर्थदर्शन भवन ट्रस्ट, पालीताणा, ई. २००९

डॉ. महेन्द्रकुमार जैने करेल हिन्दी भावानुवाद ऊपर एकंदरे आधारित आ अनुवाद छे. प्रस्तावना अभ्यासपूर्ण अने विस्तृत छे, तो पण तेमांना अमुक हिस्साने बाद करतां हिन्दी प्रस्तावनाना अनुवादरूप ते जणाय छे. बन्ने अनुवादोनी तुलना अवश्य थई शके तेम छे.

अनुवादग्रन्थना पृ. ४७२ पर सम्मतितर्कटीकानी २ गाथाओ उद्धृत छे, जे मूल-टीकाकारे ज टांकेली छे. आ गाथा हिन्दीमां अने तदनुसार ज गुर्जरानुवादमां आ प्रमाणे छे :

मुख्यसंव्यवहारेण संवादिविशदं मतम् ।
ज्ञानमध्यक्षमन्यद्धि, परोक्षमिति सङ्ग्रहः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनो अनुवाद आ प्रमाणे छे : ''अविसंवादी विशद ज्ञान प्रत्यक्ष छे. ते मुख्य अने सांव्यवहारिकना भेदथी बे प्रकारनुं छे. प्रत्यक्षथी भिन्न बाकीनां बधां ज्ञानो परोक्ष छे. आ सामान्यपणे प्रमाणोनो सङ्ग्रह छे.''

आ स्थले - ''मुख्यं संव्यवहारेण संवादि विशदं मतम् ।''

आ प्रमाणे वाचना होवी जोईए, एम समजाय छे. केमके अहीं प्रत्यक्ष अने परोक्ष ए बे प्रकारना ज्ञाननुं संकलित-सङ्ग्रहात्मक प्रतिपादन छे, तेथी प्रत्यक्षना बे भेदनुं पुनःप्रतिपादन अनावश्यक जणाय छे. जो खरेखर बे भेदनुं प्रतिपादन करवुं होत, तो ''मुख्य-संव्यवहाराभ्यां'' एवी रजूआत करवी पडी होत. अहीं श्लोकनो अर्थ आम घटावी शकाय : ''मुख्यं, संव्यवहारेण संवादि, विशदं ज्ञानमध्यक्षं मतम्; अन्यद्धि परोक्षम्, इति सङ्ग्रहः ।''

आ विषयनी चोकसाई माटे सम्मतितर्क-टीका जोई, तो त्यां पण 'मुख्यसंव्यवहारेण' एवो ज पाठ सम्पादित थयो छे. 'संवादि विशदं' एम छे. परन्तु, विचार करतां 'मुख्यं संव्यवहारेण' पाठ ज वधु समुचित लागे छे.

सम्मति-टीका (पृ. ५९५)मां आ बे पद्योना पेरेग्राफ ऊपर जे विषय-परिचयनी पंक्ति [ ]मां ते ग्रन्थना सम्पादकोए लखी छे, तेमां पण कशुंक खूटतुं जणाय छे. तेमणे लखेल पंक्ति आम छे : [मुख्यवृत्त्या संव्यवहारेण च परोक्षप्रमाणस्य स्वरूपविभजनम्] । हवे ऊपर नोंध्युं तेम जो 'मुख्यं' एवो पाठ ज उचित जणातो होय तो 'मुख्यवृत्त्या संव्यवहारेण च' एवुं तारण अयोग्य ठरे छे. वळी, आ पद्यमां तो प्रत्यक्ष-परोक्ष बन्नेनो सङ्ग्रह प्रतिपादित छे, अने सम्पादको फक्त 'परोक्षप्रमाणस्य' एटलुं ज नोंधीने अटकी जाय छे; प्रत्यक्षनी वात ज तेओ वीसरी गया छे !

प्रासङ्गिक रीते ए पण जाणी शकाय छे के टीकामां टांकेलां बे पद्योनुं स्थळ सम्मतितर्क ग्रन्थना पृ. ५९५ मां जडे छे. हवे महेन्द्रकुमारना अनुवादमां मुद्रणदोषने कारणे फक्त '५९' एवो आंकडो छपायो छे, तो श्रीनगीनभाईना गुर्जर भाषान्तर-ग्रन्थमां पण '५९' नो ज आंक 'जोवा मळे छे ! अस्तु. आवी क्षतिने परिणामे मूळ सन्दर्भ सुधी पहोंचवानुं जिज्ञासुओ माटे केटलुं कठिन बने, ते ज कहेवुं प्राप्त छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवा ग्रन्थो निरन्तर अनेकोना अध्ययननो विषय होय छे. तेथी तेनो सरस अनुवाद आवा मान्य अने अधिकारी विद्वानोना हाथे थाय तो तेथी अभ्यासु जनो उपर मोटो उपकार ज थतो होय छे. परन्तु, आम करती वेळाए जूनां कार्योमां रही गयेली भूलोनुं परिमार्जन पण थाय, तो ते अधिकारी विद्वज्जनोनो उपकार सविशेष बनी आवे. दा.त.

पृ. ३४२, एषैव चोपमा **अजीवाना**मपि । अहीं '**अब्जीवाना**मपि' जोईए.

पृ. ४३८, ततः **कथञ्चिदनवच्छिन्नो** छे, त्यां '**कथञ्चिदविच्छिन्नो**' होय, तो अर्थ साथे संगति थाय.

पृ. ४५७, – ०निःश्वासादिजीवलिङ्ग**सद्भावाभ्यां** जीवसाक्षात्कारि-**प्रत्यक्षलक्षणे**ऽपि – एम छे, त्यां– '०निःश्वासादिजीवलिङ्ग**सद्भावाऽभावाभ्यां** जीवसाक्षात्कारि**प्रत्यक्षक्षणे**ऽपि' एम होवुं वधु ठीक भासे छे.

पृ. ४८३,– 'ये सर्वद्रव्येभ्यो व्यावृत्त्या तस्य परपर्यायाः सम्भवन्ति ते सर्वे पृथक्त्वतो ज्ञातव्याः ।' आ पंक्तिनो अर्थ– ''घडो जे समस्त पर पदार्थोथी पृथक् छे ते बधा घडाना पर पर्यायो छे'' आवो करवामां आव्यो छे, तेने बदले– समस्त पर पदार्थोथी पृथक् होवाने कारणे घटना जेटला परपर्याय छे ते बधा पृथक्त्वनी–(व्यावृत्तिनी) चिन्ता करतां घटना स्वपर्याय बने छे. जेमके (घटमां) 'मठपृथक्त्व' इत्यादि घटना स्वपर्याय बने छे.'' आवो होय तो ते वधु समुचित लागे छे.

पुस्तक दळदार छे. साईझ डेमीने बदले क्राऊन थाय तो ते आवा दळदार ग्रन्थो माटे वधु योग्य बने. मुद्रण, आवरण, बाइन्डिग वगेरे आकर्षक, सुघड. अभ्यासु जनो माटे खरेखर उपयोगी अने उपकारक अनुवाद-ग्रन्थ.

८. जयन्तीप्रकरणवृत्ति : कर्ता–श्रीमलयप्रभसूरि, सं. साध्वी चन्दनबालाश्री, प्रका. श्रुतज्ञानप्रसारक सभा, अमदावाद, वि.सं. २०६५, ई. २००९.

जैन द्वादशाङ्गीगत पञ्चम अङ्गसूत्र व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रमां जयन्ती नामे श्राविकानो भगवान महावीर साथेनो संवाद नोंधायो छे. ते अधिकारने केन्द्रवर्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुद्दो बनावीने रचायेल आ ग्रन्थ छे. मूल ग्रन्थ प्राकृत २९ गाथात्मक छे. जेनी रचना पौर्णमिक आ मानतुङ्गसूरि द्वारा वि.सं. १२६०मां थई छे. तेमना ज शिष्य श्रीमलयप्रभसूरिवरे ६६०० श्लोक प्रमाण वृत्ति ते ग्रन्थ उपर लखी छे, जे संस्कृत-प्राकृत पद्यात्मक छे, अने अनेक कथाओथी सभर छे.

आ ग्रन्थनी एकमात्र ताडपत्र प्रति खम्भातना श्री शान्तिनाथ प्राचीन ताडपत्र भण्डारमां उपलब्ध छे. अन्यत्र क्यांय आनी प्रत होवानुं आज पर्यन्त जाणवामां आव्युं नथी. आ ग्रन्थनुं प्रथम सम्पादन आ. श्रीकुमुदसूरिजीए वि.सं. २००६मां करेलुं. तेमणे उपर्युक्त ताडपत्र प्रतिना आधारे आ सम्पादन कर्युं हतुं.

ते ग्रन्थ आजे अज्ञात तथा अलभ्यप्राय होवाथी तेनुं पुनः प्रकाशन आ पुस्तक रूपे थयुं छे, जे आवकारदायक छे. आवा प्राचीन अप्राप्य ग्रन्थो आ रीते पुनरुद्धार पामे ते इच्छवाजोग छे, अने ते माटे उद्धारकोने धन्यवाद घटे छे.

पुनः सम्पादिका साध्वीजीए, आ प्रकाशनमां सातेक परिशिष्टो, अनुक्रमणिका, तथा थोडाक अंशे शुद्धीकरण एटलुं करीने आ ग्रन्थने यथावत् छपाव्यो छे. प्रताकारने बदले पुस्तकाकारे कर्यो छे ते वाञ्छनीय फेरफार गणाय.

मुखपृष्ठ उपर मूल सम्पादकनुं नाम लखीने पुनःसम्पादकनुं नाम लखात तो औचित्य जळवात. अशुद्धिओनुं केटलेक अंशे मार्जन थयुं हशे, छतां हजी तेनुं प्रमाण रहे ज छे. प्रकाशन करवा पूर्वे मूल पोथी पासे पुनः जवा जेवुं हतुं. तेथी घणो लाभ थयो होत. परिशिष्टो सारां छे ज, तेमां मूळ प्राकृत ग्रन्थ (२९ गाथात्मक) ने पण एक परिशिष्ट तरीके मूक्यो होत तो जिज्ञासुओने मूळ कृति सुधी जवानुं सुगम बनत. ग्रन्थना मूल स्रोतसमान श्रीभगवतीसूत्रनो मूळ सन्दर्भ पण परिशिष्टरूपे मूकी शकायो होत तो वधु उत्तम काम बनत.

एकंदरे उपकारक स्वाध्याययोग्य प्रकाशन. आवा दुर्लभ ग्रन्थने पुनः जीवन आपवा बदल सम्पादिका साध्वीजीने पुनः पुनः अभिनन्दन.

९. इन्दुदूतम् (खण्डकाव्यम्); कर्ता : उपाध्याय श्रीविनयविजय गणि, 'प्रकाश' टीकाकार : - आ. विजयधर्मधुरन्धरसूरि, प्र. वर्धमान जैन त.वि. ग्रन्थ प्रकाशन - पालीताणा, सं. २०६४, ई. २००८

गच्छपति आ. विजयप्रभसूरिजी उपर लखेल विज्ञप्तिपत्ररूप अने मेघदूत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्यनी पाद (समस्या) पूर्तिरूप आ खण्डकाव्य एक अलङ्कारादि-काव्यगुणमण्डित प्रासादिक रचना छे. तेना परनी आ टीका साथे आ काव्य पूर्वे प्रकाशित थयेलुं छे. सम्भवतः आ तेनुं ज पुनः मुद्रण छे. पूर्व मुद्रण विषे कोई सूचना आ पुस्तकमां जडती नथी. टीकाकारनो अछडतो नामोल्लेख भूमिकामां जोवा मळे, ते सिवाय टीकाकारनो उपरणां वगेरे उपर थवो जोईए तेवो उल्लेख क्यांय जोवा मळतो नथी.सहज अनुदारता कहो के पछी आवी बाबतो विषे अनभिज्ञता कहो, जे कहो ते, तेथी ज आम बनवा पाम्युं होय ते स्पष्ट छे.

परिशिष्टो सारां छे. पण ते पूर्वना प्रकाशनमांथी लेवायां छे के नवां कोईए तैयार कर्यां छे, ते जाणवानुं कोई साधन आमां छे नहि. आधुनिक सम्पादन पद्धतिमां आवी विगतोनुं पण घणुं मूल्य होय छे.

अत्यारना मुनिवरोने अने अभ्यासीओने रस पडे तेवुं प्रेरणादायक प्रकाशन.

१०. **जैन-तर्कभाषा (सटीक)** कर्ता : उपाध्याय श्रीयशोविजयजी गणि; टीका - १. 'रत्नप्रभा' - आ. विजयोदयसूरि, २. तात्पर्यसङ्ग्रहा' - पं. सुखलाल संघवी; सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजयः, प्र. जैन ग्रन्थ प्रकाशन समिति, खम्भात, ई. २००९

जैनतर्कभाषा आ पूर्वे वि.सं. २००७मां रत्नप्रभाटीका साथे प्रकाशित थई हती. ते प्रकाशनमां रहेली मुद्रणादि अशुद्धिओ, अव्यवस्थितता व. दूर करीने तेनुं पुनः सम्पादन करवामां आवेल छे. तेनी साथे सिंघी-सिरिझमां प्रकाशित तात्पर्यसङ्ग्रहा पण जोडवामां आवेल छे. उपयोगी परिशिष्टो, टिप्पणीओ, अन्य टीकाकारोना केटलांक प्रतिपादन परत्वे विचारणात्मक लेख व. पण मूकायेलां छे. जैनन्याय-प्रमाणशास्त्रमां प्रवेश माटेनो उत्तम ग्रन्थ अने तेनां रहस्यो समजवा माटेनी उत्तम टीकाओ.

११. सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनढुंढिका (भाग-२) सं. मुनिविमल-कीर्तिविजय, प्र. कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवमजन्मशताब्दी स्मृति-संस्कार-शिक्षण निधि - अमदावाद, ई. २००९

सिद्धहेमशब्दानुशासन-बृहद्वृत्तिनां तमाम उदाहरणोना समासविग्रह-साधनिका व. समजावती टीकानुं सम्पादन. जेना आ द्वितीय भागमां बीजा अध्यायना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीजो-त्रीजो-चोथो अने त्रीजा अध्यायनो पहेलो एम कुल चार पाद समावाया छे. व्याकरणना अभ्यासीओ माटे शिक्षकनी गरज सारे तेवो ग्रन्थ.

१२. **सिद्धहेमलघुवृत्त्युदाहरणकोशः** सं.-मुनिधर्मकीर्तिविजय, मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय, प्र.-कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति - संस्कार-शिक्षणनिधि, ई. २००९

सिद्धहेमशब्दानुशासन-लघुवृत्तिनां तमाम उदाहरण-प्रत्युदाहरणोनी स्थान-निर्देश साथेनी सूची. संशोधन-वांचन इत्यादिमां अतीव उपयोगी ग्रन्थ.

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org